कुरुक्षेत्र

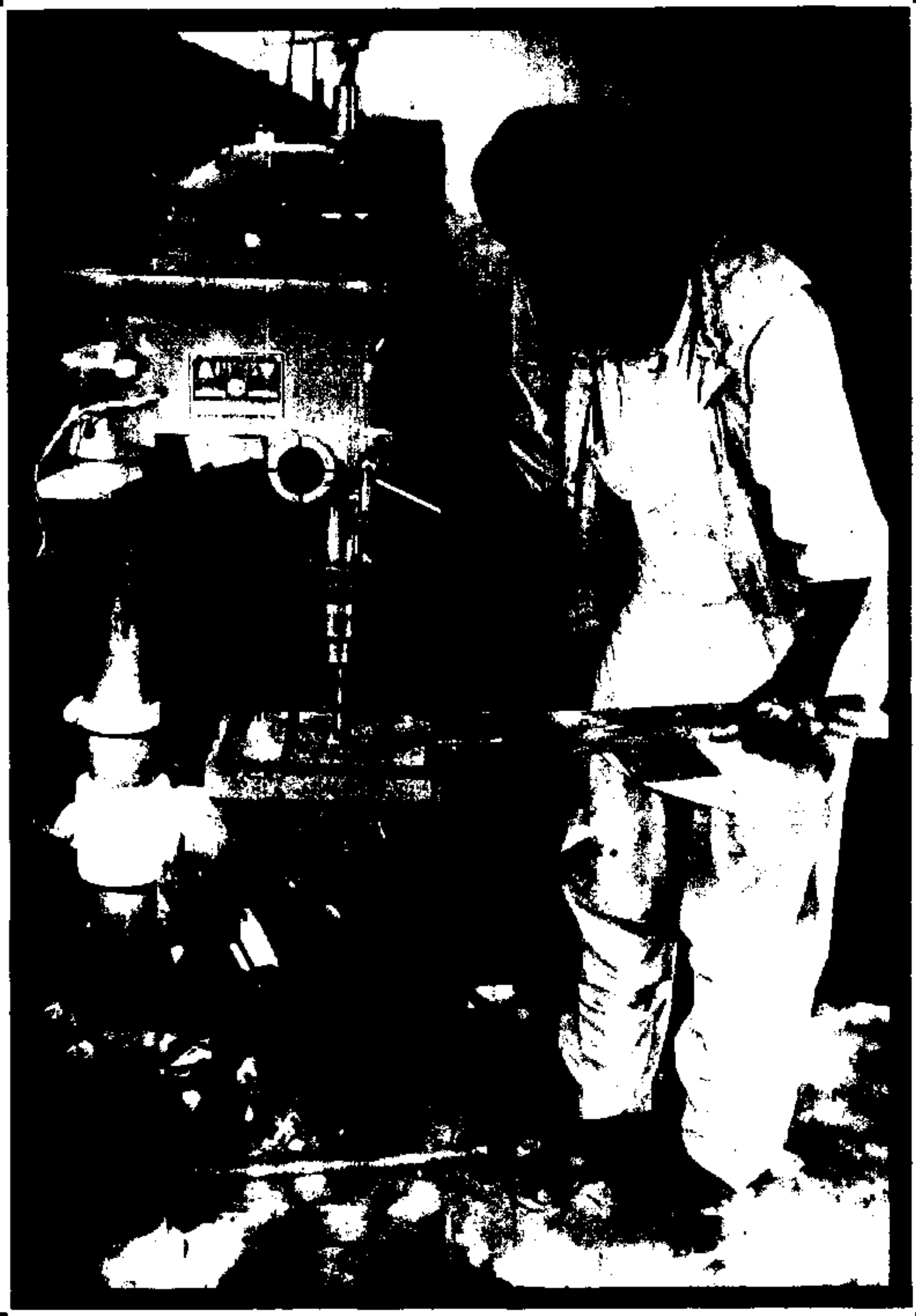

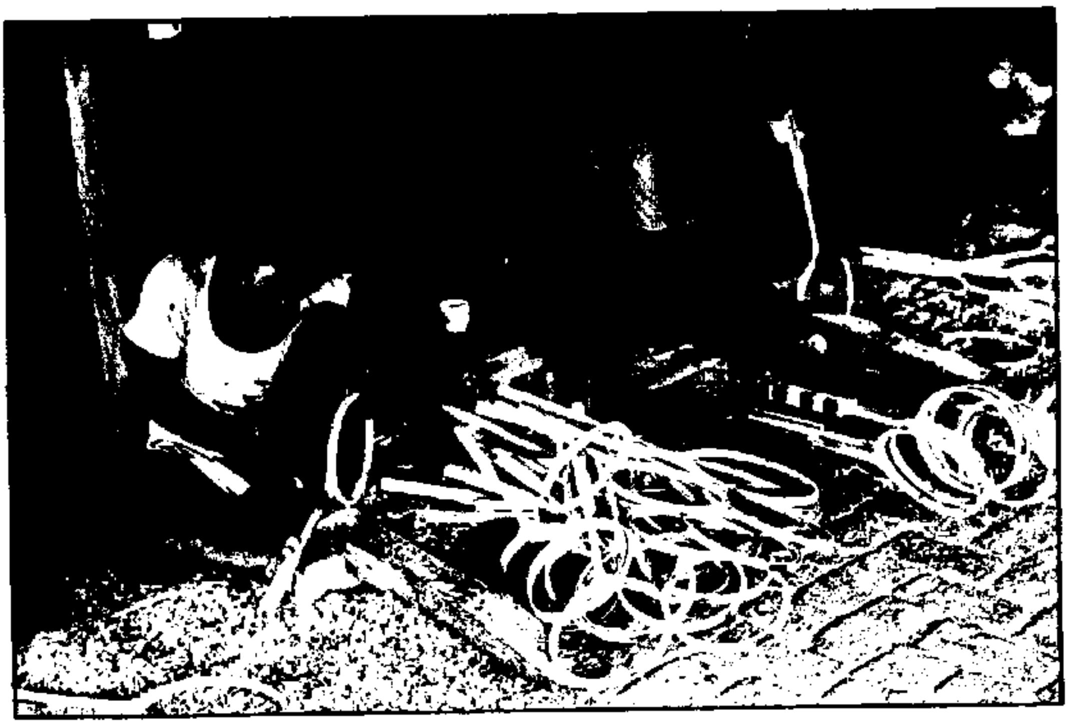

ग्रामीण क्षेत्र, जिसकी जनसंख्या 10 हजार के आसपास हो, में स्थापित वह उद्योग जिसमें स्थिर पूंजी निवेश (संयंत्र, मशीनरी, भूमि एवं भवन) प्रति कारीगर या कामगार 15,000 रुपये से अधिक न हो, ग्रामीण उद्योग कहलाता है।

वर्ष—35, अंक 4, माघ-फाल्गुन-शक 1911

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास विभाग का प्रमुख मासिक

'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, एकांकी, कविता, संस्मरण, हास्य-व्यंग्य चित्र आदि भेजिए। अस्वीकृत रचनाओं की वापसी के लिए टिकट लगा व पता लिखा लिफाफा साथ आना आवश्यक है।

'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने, पता बदलने या अंक न मिलने की शिकायत, व्यापार व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 से कीजिए।

सम्पादक : राम बोध मिश्र
सहायक सम्पादक : गुरचरण लाल लूथरा
उप सम्पादक : राकेश शर्मा

उत्पादन अधिकारी : राम स्वरूप मुंजाल
आवरण पृष्ठों की साज सज्जा : अलका
चित्र : फोटोग्राफर—रमेश कुमार ग्रामीण विकास विभाग से साभार

एक प्रति : 2.00 रु.
वार्षिक चंदा : 20 रु.

विषय सूची

ग्रामीण औद्योगीकरण : ग्रामीण विकास की समस्याओं का एकमात्र विकल्प...! 2
डॉ. मुन्नीलाल विश्वकर्मा

भारत में ग्रामीण औद्योगीकरण: समस्या और संभावनाएं 6
सुरेन्द्र कुमार गुप्ता

नया आर्थिक कार्यक्रम और ग्रामीण उद्योग 11
रफीक शास्त्री

ग्रामीण उद्योगों में संगठन की आवश्यकता 13
कमल टावरी

स्वागत! हे ऋतु राज बसन्त! 17
राधेश्याम 'आर्य' विद्यावाचस्पति

ग्रामीण अर्थव्यवस्था में ग्रामोद्योग की भूमिका 18
मनमोहन

भारत में ग्रामीण औद्योगीकरण 21
डॉ. गिरिजा प्रसाद दुबे

पर्वतीय क्षेत्र में: भेड़-बकरी पालन और ऊन कुटीर उद्योग के ह्रास के कारण 25
महिताप सिंह सजवान

गांवों में परम्परागत धंधे और उनका बदलता स्वरूप 27
ओम प्रकाश तोषनीवाल, जितेन्द्र कुमार

ग्रामीण औद्योगीकरण 30
सच्चिदानन्द सिंह, विनय कुमार सूद, अमन यादव

ग्रामीण औद्योगीकरण: समस्याएं, समाधान और संभावनाएं 33
हरि विश्नोई

ग्रामीण औद्योगीकरण—प्रगति और संभावनाएं 37
अखिलेश

भारतीय आर्थिक विकास में लघु एवं ग्रामीण उद्योगों का योगदान 39
डॉ. साहबदीन मौर्य

सामाजिक संरचना एवं औद्योगीकरण 41
प्रो. के. एल. सेकड़ा

ग्रामीण औद्योगीकरण की आवश्यकता एवं संभावनाएं 43
डॉ. राकेश अग्रवाल

ग्रामोद्योगों के विकास में सहायक खादी और ग्रामोद्योग आयोग 46
डॉ. अजय जोशी

आंखों की देखभाल कैसे करें 48
आभा जैन

प्रकाशित लेखों में अभिव्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं तथा यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी यही हो।

सम्पादकीय पत्र व्यवहार : सम्पादक, कुरुक्षेत्र (हिन्दी), कृषि मंत्रालय, ग्रामीण विकास विभाग, 467, कृषि भवन, नई दिल्ली के पते पर करें।

दूरभाष : 384888

ग्रामीण औद्योगीकरण : ग्रामीण विकास की समस्याओं का एकमात्र विकल्प....!

डा. मुन्नीलाल विश्वकर्मा

भारत जैसा एक विकासशील देश, जो ग्राम प्रधान हो, जहां की लगभग 76 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर परोक्ष अथवा अपरोक्ष रूप से निर्भर हो, जहां जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ रही हो एवं जनाधिक्य की समस्या विद्यमान हो, कृषि एवं कृषक पिछड़े हुए हों, कृषि पर जनसंख्या का दबाव लगातार बढ़ रहा हो, गरीबी एवं बेकारी की समस्या सुरसा के मुंह की तरह बढ़ती जा रही हो, जहां तकनीकी ज्ञान एवं पूंजी की कमी के चलते प्राकृतिक एवं मानवीय संसाधनों का पूर्ण विदोहन सम्भव न हो पा रहा हो, ऐसी परिस्थिति वाले देश के लिए ग्रामीण औद्योगीकरण की अनिवार्यता को कदाचित नकारा नहीं जा सकता।

नियोजन के 38 वर्षों के उपरान्त जबकि 6 पंचवर्षीय योजनाएं, तीन वार्षिक योजनाएं, एक वार्षिक योजना भी समाप्त हो चुकी है और सातवीं योजना अपने अन्तिम चरण में है—कमोवेश सभी पंचवर्षीय योजना का उद्देश्य द्रुतगति से आर्थिक विकास, आत्म-निर्भरता की प्राप्ति, आर्थिक विषमता को दूर करना, गरीबी का निवारण एवं बेरोजगारी की समस्या का समाधान रहा है। लेकिन हम आर्थिक विषमता को कम करने, गरीबी मिटाने और बेरोजगारी की समस्या में लाख प्रयास के बावजूद असफल रहे हैं।

आज जनमानस में आशंकाएं उत्पन्न होने लगी है कि क्या हमारी नियोजन की प्राथमिकताएं ही गलत रही हैं? अथवा क्या योजनाओं का निर्माण ही अनुपयुक्त था? अथवा क्या योजनाओं का क्रियान्वयन पक्ष ही कमजोर रहा है? अथवा क्या हमारी राजनीतिक इच्छा-शक्ति ही दुर्बल रही है? इसका कारण कुछ भी रहा हो लेकिन देश की इन आधारभूत समस्याओं का समाधान इतनी लम्बी अवधि एवं अथक प्रयासों के बावजूद भी न होना हमारे नियोजन एवं नियोजन कर्ताओं के लिए एक चुनौती है।

बढ़ती ग्रामीण जनसंख्या

भारत की ग्रामीण जनसंख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है। वर्ष 1951 में जहां ग्रामीण जनसंख्या 29.80 करोड़ (कुल जनसंख्या का 82.7 प्रतिशत) थी वही बढ़कर सन् 1961 में 36 करोड़ (82.0 प्रतिशत), 1971 में 43.90 करोड़ (80.1 प्रतिशत) एवं 1981 में 52.50 करोड़ (76.7 प्रतिशत) हो गई। यह बात सत्य है कि ग्रामीण आबादी तो बढ़ती जा रही है लेकिन जहां तक कुल जनसंख्या में ग्रामीण जनसंख्या के प्रतिशत का प्रश्न है वह धीरे-धीरे घटता जा रहा है।

बढ़ती ग्रामीण गरीबी

भारत में गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाली ग्रामीण गरीबों की संख्या वर्ष 1960-61 में 13.80 करोड़ थी जो बढ़कर वर्ष 1977-78 में 25.30 करोड़ हो गई जबकि गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाले गरीबों का प्रतिशत वर्ष 1960-61 में 38 प्रतिशत एवं 1977-78 में 51 प्रतिशत था, यही नहीं गरीबी का स्तर भिन्न-भिन्न राज्यों में भिन्न-भिन्न था। वर्ष 1977-78 में गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाली ग्रामीण जनसंख्या सबसे कम पंजाब में 11.87 प्रतिशत एवं हरियाणा में 23.25 प्रतिशत थी जबकि सर्वाधिक गरीब ग्रामीण जनसंख्या उड़ीसा में 68.97 प्रतिशत एवं त्रिपुरा में 64.28 प्रतिशत थी। दूसरे शब्दों में वर्ष 1977-78 में ग्रामीण जनसंख्या का निम्न स्तर के गरीब लोग 30 प्रतिशत उपभोग व्यय का सिर्फ 14.3 प्रतिशत उपभोग कर रहे थे जबकि इसके ऊपर के लोग 30 प्रतिशत घरेलू व्यय कर 50.4 प्रतिशत उपभोग कर रहे थे। लेकिन वर्ष 1983 में उपभोग व्यय का वितरण क्रमशः 15.2 प्रतिशत एवं 50.9 प्रतिशत था। लेकिन वर्ष 1984-85 में गरीबी रेखा के नीचे रहने वाली ग्रामीण जनसंख्या घटकर 22.20 करोड़ (40 प्रतिशत) हो गई जबकि वर्ष 1989-90 में घटकर 16.90 करोड़ (28 प्रतिशत) होने का अनुमान लगाया गया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि ग्रामीण आबादी का बहुत बड़ा भाग अभी भी गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन कर रहा है।

बढ़ती ग्रामीण बेरोजगारी

ग्रामीण जनसंख्या में वृद्धि के चलते भूमि पर जनसंख्या का भार एवं प्रति व्यक्ति उपलब्ध भूमि की मात्रा निरन्तर घटती जा रही है जिसके फलस्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी, अर्द्ध बेरोजगारी एवं अदृश्य बेरोजगारी की समस्या बढ़ती जा रही

है। भारत में ग्रामीण बेरोजगारी की दर (1972-73) में 3.9 प्रतिशत थी जबकि रिपब्लिक कोरिया (1965) में 3.1 प्रतिशत, पनामा (1967) में 2.8 प्रतिशत, वेनेजुएला में (1968) में 3.1 प्रतिशत, चिली (1966) में 2.0 प्रतिशत, इण्डोनेशिया (1971) में 1.8 प्रतिशत एवं ताईवान (1968) में 1.4 प्रतिशत थी।

वर्ष 1981 में ग्रामीण क्षेत्रों में गैर कार्य कर्ताओं की संख्या 31 करोड़ (61.1 प्रतिशत) थी जिसमें से पुरुष 12 करोड़ (46.1 प्रतिशत) और महिलाएं 19 करोड़ (76.8 प्रतिशत) थीं।

ग्रामीण औद्योगीकरण—एकमात्र विकल्प

बढ़ती हुई ग्रामीण आबादी को रोजगार मुहैया कराने, गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाली आबादी को ऊपर उठाने, आर्थिक विषमता कम करने एवं बढ़ती शहरीकरण की समस्या के समाधान का एक मात्र विकल्प है—ग्रामीण औद्योगीकरण। क्योंकि बढ़ती ग्रामीण आबादी को कृषि क्षेत्र में रोजगार के सीमित अवसर को देखते हुए सबको काम नहीं दिया जा सकता।

चूंकि भारत एक विकासशील देश है जहां श्रम का बाहुल्य है एवं पूंजी का अभाव है। अतः यहां ग्रामीण औद्योगीकरण का उद्देश्य रोजगार मुहैया कराना होना चाहिए। इस दृष्टिकोण से ग्रामीण औद्योगीकरण का तात्पर्य गांवों में बड़े-बड़े उद्योगों की स्थापना से नहीं अपितु ऐसे छोटे-छोटे उद्योगों के विकास से है जिनमें एक ओर जहां कम पूंजी का निवेश हो, वहीं वे पर्याप्त मात्रा में रोजगार भी मुहैया करते हों, इस दृष्टिकोण से ग्रामीण क्षेत्रों में लघु उद्योगों विशेषकर कृषि पर आधारित जैसे—दुग्ध उद्योग, मुर्गी पालन, वानिकी, मछली पालन, मधुमक्खी पालन, रेशम कीट पालन, सूअर पालन, भेंड़ एवं बकरी पालन, कताई, बुनाई, खादी, हथकरघा उद्योग, जूता उद्योग, टोकरी बनाना, ईंट उद्योग, कृषि औजार, साधारण धातु के बर्तन, सोने चांदी के आभूषण, गुड़ बनाना, क्षेत्रीय मांगों को पूरा करने हेतु उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन आदि ग्रामीण उद्योगों के उदाहरण हैं। कृषि पर आधारित इन ग्रामीण उद्योगों को ग्रामीण क्षेत्रों में छोटे पैमाने पर शुरू किया जा सकता है।

नियोजित ग्रामीण औद्योगीकरण के जरिए ग्रामीण विकास की वकालत निम्नलिखित तथ्यों पर भी की जा सकती है :

1. गांव के कच्चे माल पर आधारित ग्रामीण उद्योग, ग्रामीण क्षेत्रों के विकास के लिए उपयुक्त हैं।
2. ग्रामीण क्षेत्रों में लघु उद्योगों की स्थापना करके ग्रामीण क्षेत्र की अति जनसंख्या को रोजगार के अवसर मुहैया करके, अर्द्ध बेरोजगारी, अदृश्य बेरोजगारी की समस्या का समाधान किया जा सकता है।
3. ग्रामीण अर्थव्यवस्था के आय स्तर को सुधारने हेतु क्षेत्रीय प्राकृतिक और मानवीय संसाधन का प्रयोग किया जा सकता है।
4. ग्रामीण औद्योगीकरण के चलते बहुसंख्यक ग्रामीणों की क्रय शक्ति में सुधार होगा, फलस्वरूप उद्योगों पर आधारित वस्तुओं की मांग में वृद्धि होगी और उनके जीवन स्तर में सुधार होगा।
5. ग्रामीण क्षेत्रों में उद्योगों की स्थापना करके ग्रामीण क्षेत्रों से शहरों में जनसंख्या के पलायन को रोका जा सकता है।
6. ग्रामीण औद्योगीकरण के चलते कृषि एवं उद्योगों के सहयोग से संतुलित विकास की प्राप्ति हो सकेगी।
7. ग्रामीण क्षेत्रों में लघु उद्योगों की स्थापना के चलते एक बड़ी सीमा तक उद्योगों का विकेन्द्रीकरण किया जा सकता है।
8. ग्रामीण औद्योगीकरण से धन एवं आय की असमानता में कमी आएगी।
9. ग्रामीण उद्योगों से शीघ्रातिशीघ्र उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है क्योंकि उसमें तकनीकी ज्ञान की कम आवश्यकता होती है और इन्हें ग्रामीणों द्वारा यथाशीघ्र प्रारम्भ किया जा सकता है।

नियोजन काल में ग्रामीण और लघु उद्योगों पर किया गया व्यय

नियोजन काल में ग्रामीण एवं लघु उद्योगों पर किए जाने वाले कुल व्यय को तालिका 1 द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। तालिका से स्पष्ट है कि पहली योजना में जहां ग्रामीण और लघु उद्योगों पर कुल व्यय 48 करोड़ किया गया वहीं छठी योजना में बढ़कर 1780.5 करोड़ रुपये हो गया तथा सातवीं योजना में 2752.7 करोड़ रुपये आबंटित किया गया है। सातवीं योजना के प्रथम वर्ष 1985-86 में 524.3 करोड़ रुपये, दूसरे वर्ष 1986-87 में 987.0 करोड़ एवं तीसरे वर्ष 1987-88 में 603.5 करोड़ रुपये व्यय किए गए।

कहना न होगा कि कुल जनसंख्या का लगभग 70 प्रतिशत भाग गांवों में निवास करता है लेकिन पहली पंचवर्षीय योजना को छोड़कर, शेष अन्य पंचवर्षीय योजनाओं में ग्रामीण विकास पर 40 प्रतिशत से कम ही व्यय किया गया है। क्षेत्र के विकास

हेतु पहली योजना में 51 प्रतिशत, दूसरी योजना में 37 प्रतिशत, तीसरी योजना में 38 प्रतिशत, चौथी योजना में 35 प्रतिशत, पांचवीं योजना में 37 प्रतिशत एवं छठी योजना में 40 प्रतिशत व्यय किया गया है जबकि शहरी क्षेत्रों पर (पहली योजना को छोड़कर) सभी योजनाओं में 60 प्रतिशत से अधिक व्यय लगभग 30 प्रतिशत जनसंख्या के लिए किया गया है जो कि किसी भी दशा में उचित नहीं ठहराया जा सकता है।

लघु उद्योगों का विकास

भारत में लघु उद्योगों का विकास (जिसमें ग्रामीण उद्योग भी सम्मिलित हैं) विगत दो दशकों में तीव्र गति से हुआ है। इन उद्योगों की संख्या वर्ष 1973-74 में 4.16 लाख थी जो बढ़कर वर्ष 1986-87 में 14.57 लाख (अर्थात 3.5 गुना) हो गई। इसी अवधि में रोजगार के अवसर 39 लाख से बढ़कर 1 करोड़ हो गये। वर्ष 1988-89 में 1 करोड़ 12 लाख लोगों को रोजगार दिलाने का लक्ष्य रखा गया। उत्पादन 7200 करोड़ रुपये से बढ़कर 72,250 करोड़ रुपये (अर्थात् 10 गुना) हो गया। निर्यात जहां वर्ष 1973-74 में 393 करोड़ रुपये का था वही बढ़कर 1985-86 में 2785 करोड़ रुपये (अर्थात् 7 गुना) हो गया।

तालिका—1

नियोजन में ग्रामीण और लघु उद्योगों पर व्यय

योजना	ग्रामीण और लघु उद्योगों पर कुल व्यय (करोड़ रुपये में)	कुल योजनागत व्यय का ग्रामीण और लघु उद्योगों पर व्यय (प्रतिशत में)
पहली योजना	48.0	2.1
दूसरी योजना	187.0	4.0
तीसरी योजना	240.8	2.8
वार्षिक योजनाएं	126.1	1.9
चौथी योजना	242.6	1.5
पांचवीं योजना	592.5	1.5
1979-80	255.7	2.1
छठी योजना	1780.5	1.8
सातवीं योजना	2752.7	1.5
1985-86	524.3	1.6
1986-87	587.0	1.5
1987-88	603.5	1.3

बढ़ती रूग्ण औद्योगिक इकाइयों की संख्या

उपर्युक्त तथ्य लघु उद्योगों के तीव्र विकास की ओर इंगित कर रहे हैं लेकिन वास्तविकता तो यह है कि जहां लघु उद्योगों की संख्या, उत्पादन एवं निर्यात में वृद्धि हुई है वहीं रुग्न लघु इकाइयों की संख्या 20327 थी जिसने बैंक साख की रकम 231 करोड़ रुपये फंसी थी वहीं वर्ष 1987 में रुग्न लघु इकाइयों की संख्या बढ़कर 156226 हो गई जिसमें 1542 करोड़ रुपये बैंक साख की रकम फंसी हुई है।

सरकार द्वारा लघु एवं कुटीर उद्योगों (जिसका कि ग्रामीण उद्योग एक भाग है) के विकास हेतु उठाए गए कदम

(1) सरकार द्वारा सन् 1948 में अखिल भारतीय कुटीर उद्योग बोर्ड, 1952 में अखिल भारतीय खादी ग्रामोद्योग मण्डल एवं अखिल भारतीय हस्तकला बोर्ड, 1954 में लघु उद्योग बोर्ड एवं नारियल जटा बोर्ड, 1955 में राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम, 1957 में अखिल भारतीय हथकरघा बोर्ड, 1958 में भारतीय दस्तकारी विकास निगम एवं भारतीय लघु उद्योग परिषद की स्थापना की गई।

(2) सरकार द्वारा सन् 1948 में घोषित प्रथम औद्योगिक नीति में लघु एवं कुटीर उद्योग के महत्व को स्वीकार किया गया था। तत्पश्चात् 1956, 1979 एवं 1980 में भी घोषित औद्योगिक नीतियों में भी लघु एवं कुटीर उद्योगों पर विशेष बल दिया गया।

(3) लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास के लिए रिजर्व बैंक आफ इण्डिया, स्टेट बैंक आफ इण्डिया, राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम, राज्य वित्त निगम, सहकारी बैंक एवं व्यापारिक बैंक, राज्य सरकारें (सहकारी सहायता अधिनियम के अन्तर्गत) दीर्घकालीन ऋण प्रदान करती हैं।

(4) इन उद्योगों को तकनीकी सहायता प्रदान करने हेतु लघु उद्योग विकास संगठन की स्थापना की गई है, जिसके अन्तर्गत 27 लघु उद्योग सेवा संस्थान, 31 शाखा संस्थान, 37 विस्तार केन्द्र एवं 4 क्षेत्रीय प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित किए गए हैं।

(5) लघु एवं कुटीर उद्योगों के लिए करों में छूट विपणन सम्बंधी सुविधाएं, लाइसेंसिंग नीति में छूट, अनुसंधान केन्द्रों की स्थापना, औद्योगिक बस्तियों की स्थापना, प्रदर्शनियों का आयोजन, कच्चे माल का आबंटन, राष्ट्रीय कोष की स्थापना एवं जिला उद्योग केन्द्र की स्थापना की गई है।

ग्रामीण औद्योगीकरण की समस्याएं

भारतीय अर्थव्यवस्था में ग्रामीण उद्योग का विशेष महत्व होते हुए भी ये उद्योग—वित्त, कच्चे माल, विद्युत, तकनीकी,

विपणन, परिवहन, बड़े उद्योगों से प्रतिस्पर्द्धा एवं कुशल प्रबंधकों का अभाव आदि समस्याओं से जूझ रहे हैं।

सुझाव

ग्रामीण उद्योगों के विकास में निम्नलिखित सुझाव सहायक सिद्ध होंगे :

1. ग्रामीण उद्योगों को पुरानी तकनीक का परित्याग कर नवीन तकनीक को अपनाना चाहिए।
2. ग्रामीण उद्योगों एवं वृहद उद्योगों में प्रतियोगिता के स्थान पर समन्वय स्थापित किया जाए।
3. ग्रामीण उद्योगों में वस्तुओं के प्रभावीकरण के साथ-साथ किस्म नियंत्रण पर भी ध्यान दिया जाए।
4. ग्रामीण उद्योग से सम्बंधित उद्योगों में अनुसंधान कार्य किया जाए ताकि उत्पादन लागत कम की जा सके।
5. ग्रामीण उद्योगों को वित्तीय सुविधाएं प्रदान करने वाली संस्थाओं का और अधिक विस्तार किया जाए।
6. ग्रामीण उद्योगों को उचित संरक्षण देने हेतु विशेष कानून बनाए जाएं।
7. ग्रामीण उद्योगों के श्रमिकों एवं उद्यमियों के प्रशिक्षण हेतु प्रशिक्षण सुविधाओं का विस्तार किया जाए।
8. ग्रामीण उद्योग द्वारा तैयार माल की बिक्री हेतु विशेष व्यवस्था की जाए।
9. ग्रामीण उद्योग जिन वस्तुओं का उत्पादन करते हों उन वस्तुओं का उत्पादन वृहद उद्योगों द्वारा कदापि न किया जाए।

निष्कर्ष के रूप में हम यह कहते हैं कि यदि सरकार ग्रामीण औद्योगीकरण पर अपना पूरा ध्यान केन्द्रित करे तो निःसंदेह देश से गरीबी, भुखमरी, बेरोजगारी, आर्थिक विषमता का कलंक मिटाया जा सकता है और भारत जो प्राचीन काल में 'सोने की चिड़िया' के नाम से जाना जाता था, जहां दूध की नदियां बहा करती थीं, पुनः उसी स्थिति में लौट सकता है तथा प्रत्येक क्षेत्र में आत्मनिर्भर बनकर विश्व को एक नई दिशा दे सकता है।

प्राध्यापक—अर्थशास्त्र विभाग
काशी विद्यापीठ, वाराणसी

भारत में ग्रामीण औद्योगीकरण : समस्या और सम्भावनाएं

सुरेन्द्र कुमार गुप्ता

भारतीय आर्थिक विकास की एक बड़ी समस्या ग्रामीण जीवनस्तर को उठाकर विकास का मार्ग प्रशस्त करना व अपार जनशक्ति को रोजगार दिलाना है। यहां की 76 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में रहती है। कृषि आज भी इनकी आय का मुख्य साधन है। परन्तु कृषि क्षेत्र में किसानों एवं मजदूरों को नियमित रूप से रोजगार नहीं मिल पाता है क्योंकि फसलोत्पादन की जितनी भी क्रियाएं हैं, उनमें प्रायः निरन्तरता नहीं पाई जाती है। साथ ही ये क्रियाएं मानसून के साथ जुड़ी हैं। यदि मानसून अच्छा है तो खेती अच्छी होगी जिससे किसानों की आय में वृद्धि होगी। यदि किसी कारणवश वर्षा न होने पर फसल अच्छी नहीं होती है तब किसानों को भीषण बेरोजगारी का सामना करना पड़ता है। दूसरी ओर तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या की विस्फोटक वृद्धि के कारण ग्रामीण बेरोजगारों की मात्रा में काफी वृद्धि हुई है। साथ ही कृषि पर जनसंख्या के दबाव तथा सीमित भूमि क्षेत्रफल के कारण कृषि क्षेत्र में रोजगार पाने एवं आय अर्जित करने के अवसर भी सीमित हो गए हैं। अतः समन्वित कृषि विकास की नीति से ग्रामीण क्षेत्रों का विकास सम्भव नहीं है। ग्रामीण बेरोजगारी को दूर करने के लिए आवश्यक है कि ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के ऐसे साधन उपलब्ध कराए जाएं जो कृषि पर आधारित न हों। फलतः ग्रामीण औद्योगीकरण को इस दिशा में एक महत्वपूर्ण उपाय के रूप में स्वीकार किया गया है।

आशय

ग्रामीण औद्योगीकरण के विचार का अवलोकन दो दृष्टिकोणों से कर सकते हैं—पहला, ग्रामीण क्षेत्रों में औद्योगीकरण तथा दूसरा, ग्रामीण क्षेत्रों का औद्योगीकरण. पहला दृष्टिकोण यह दर्शाता है कि किस प्रकार के उद्योगों को और कैसे ग्रामीण क्षेत्रों में स्थापित कर सकते हैं तथा ग्रामीण जनता पर इसका कैसा प्रभाव पड़ता है। आज विश्व के अधिकांश विकासशील देशों ने ग्रामीण क्षेत्रों में औद्योगीकरण की नीति को तीन प्रकार के कार्यक्रमों के रूप में अपनाया है। ये कार्यक्रम निम्न हैं:

(i) बड़े-बड़े कारखानों की स्थापना करना है जो मुख्यतः कृषि उपज को कच्चे माल के रूप में उपयोग करते हैं, जैसे—चीनी मिल, गुड़ एवं खाण्डसारी कारखाना, कपास एवं जूट बनाई कारखाना इत्यादि;

(ii) परम्परागत हस्तशिल्प एवं शिल्पकारों के उत्पादों को प्रोत्साहन एवं संरक्षण देना है, तथा

(iii) लघु इकाइयों को प्रोत्साहन एवं बढ़ावा देना है, जो कृषि उपज के उपयोग के साथ-साथ कृषि के लिए आवश्यक लागत व वस्तुओं का निर्माण करते हैं।

ग्रामीण औद्योगीकरण का दूसरा दृष्टिकोण एक ऐसी प्रक्रिया को दर्शाता है जो ग्रामीण क्षेत्रों के औद्योगीकरण पर विशेष बल देता है। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत ग्रामीण अर्थव्यवस्था को आधुनिक रूप में बदला जाता है। यानि यह दृष्टिकोण निरन्तर परिवर्तनशील अर्थव्यवस्था के विचार पर आधारित है।

इन दृष्टिकोणों से यह स्पष्ट होता है कि ग्रामीण औद्योगीकरण एक क्षेत्र के विकास में उद्योगों को शामिल करने की एक प्रक्रिया है तथा उद्योगों का विकास उस क्षेत्र में उपलब्ध संसाधनों एवं पूंजी की साझीदारी द्वारा करना है। ग्रामीण औद्योगिक विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत ग्राम एवं लघु उद्योगों के विकास पर बल दिया जाता है। ग्राम एवं लघु उद्योग आठ उप-क्षेत्रों में बंटा हुआ है। खादी, ग्रामोद्योग, हथकरघा, रेशम उद्योग, हस्तशिल्प तथा नारियल जटा परम्परागत उद्योग के अन्तर्गत आते हैं और अंतिम दो उद्योग लघु उद्योग और बिजली चालित करघे आधुनिक लघु उद्योग के अन्तर्गत आते हैं। आधुनिक लघु उद्योगों और बिजली चालित करघों में आधुनिक प्रौद्योगिकियों का उपयोग होता है और ये ज्यादातर शहरी इलाकों में होते हैं। जिनमें सामान्यतया पूर्णकालिक रोजगार मिलता है जबकि परम्परागत उद्योग अधिकांशः ग्रामीण और अर्द्धशहरी स्वरूप वाले होते हैं जो रोजगार के अवसर (पूर्णकालिक एवं अंशकालिक दोनों प्रकार के) पैदा करते हैं और उन्हें बनाए रखते हैं, आय के साधन बढ़ाते हैं और देश के हस्तशिल्प और कला की विरासत को सुरक्षित रखते हैं।

भूमिका

ग्रामीण उद्योग हमारी अर्थव्यवस्था के महत्वपूर्ण अंग हैं, जिनकी स्थापना एवं विकास द्वारा ग्रामीण एवं अर्द्धशहरी क्षेत्रों

में बढ़ती हुई बेरोजगारी एवं निर्धनता की मौलिक समस्याओं से छुटकारा पा सकते हैं। ग्रामीण उद्योगों को गांवों में सीमित स्थान, सीमित पूंजी एवं सीमित प्रबन्धकीय कौशल द्वारा स्थापित किया जा सकता है। ये उद्योग वस्तुओं का उत्पादन, स्थानीय तौर पर उपलब्ध संसाधानों एवं कच्चे माल के उपभोग से करते हैं। इससे परिवहन व्यय में बचत होती है। साथ ही योजनारहित नगरीकरण से उत्पन्न समस्याओं का निदान ग्रामीण उद्योगों की स्थापना द्वारा कर सकते हैं तथा एक शोषणमुक्त समाज की रचना होती है।

योजना आयोग ने लिखा है कि ग्रामीण औद्योगीकरण का प्राथमिक उद्देश्य रोजगार के अवसरों में वृद्धि करना, आय एवं जीवन स्तर को ऊंचा उठाने में मदद करना तथा एक संतुलित एवं समन्वित ग्रामीण विकास के मार्ग को प्रशस्त करना है। गांधीजी ने देश के तीव्र आर्थिक एवं ग्रामीण विकास में ग्रामीण औद्योगीकरण की भूमिका को जनमानस के सामने रखा था। उन्होंने ग्रामीण औद्योगीकरण कार्यक्रम के अन्तर्गत परम्परागत ग्रामोद्योगों को स्थापित करने का सुझाव दिया था, जिनकी स्थापना कम से कम पूंजी विनियोग द्वारा की जा सकती है। प्रो. गुन्नार मिर्डल ग्रामीण औद्योगीकरण की विचारधारा का समर्थन करते हुए कहते हैं कि दक्षिणी एशियाई देश बेहद संगठित पश्चिमी देशों के उद्योगों के छोटे-छोटे समूहों का निर्माण करके भारी भूल कर रहे हैं, क्योंकि वे गतिहीनता के समुद्र से घिरे रहेंगे। विद्यमान कुटीर व ग्रामीण उद्योगों के साथ सीधी प्रतिस्पर्धा करने वाले उद्योगों का विकास करके वे लाखों लोगों को रोजी-रोटी से वंचित कर देंगे जिनके पास तुरन्त रोजगार का कोई दूसरा साधन नहीं रहेगा।

तालिका-1 से यह स्पष्ट होता है कि ग्रामीण एवं अर्द्धशहरी क्षेत्रों में ग्राम और लघु उद्योग रोजगार के अवसरों का सृजन करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। इससे औद्योगिक विकास को गति मिलती है। परम्परागत उद्योग मूलतः ग्रामीण क्षेत्रों में निरन्तर पूर्णकालिक और अंशकालिक रोजगार के अवसर पैदा कर रहे हैं। खादी की तुलना में ग्रामोद्योग में रोजगार के अवसर अधिक पैदा हो रहे हैं जबकि लघु उद्योग में रोजगार अवसर सृजन करने की क्षमता परम्परागत उद्योग की तुलना में काफी अधिक हैं।

ग्रामीण औद्योगीकरण के प्रयास

स्वतंत्रता के पश्चात, ग्रामीण औद्योगीकरण को देश के नियोजित विकास में प्रमुख आर्थिक और सामाजिक लक्ष्य के रूप में स्वीकार किया गया है कि कृषि तथा आधुनिक औद्योगिक क्षेत्र आदि के अवरोधों को ध्यान में रखकर प्रत्येक

तालिका-1

ग्रामीण उद्योग में कार्यरत व्यक्ति

(लाख में)

वर्ष	खादी		ग्रामोद्योग		लघु उद्योग
	पूर्ण-कालिक	अंश-कालिक	पूर्ण-कालिक	अंश-कालिक	पूर्ण-कालिक
1979-80	3.41	7.79	5.66	10.47	67.0
1980-81	3.95	8.11	6.28	11.82	71.0
1981-82	4.99	8.44	6.88	12.81	75.0
1982-83	4.50	9.11	6.94	13.79	79.0
1983-84	4.43	9.16	7.75	14.17	84.1
1984-85	4.24	8.81	8.24	16.60	90.0
1985-86	4.34	9.13	8.90	16.71	96.0
1986-87	4.38	9.50	9.94	16.88	101.4

पंचवर्षीय योजनाओं में रोजगार पैदा करने एवं जनसमुदाय के लिए आवश्यक उपभोक्ता सामग्रियों का उत्पादन करने में ग्रामीण उद्योगों को बहुत महत्व दिया गया है। प्रथम पंचवर्षीय योजना में ग्रामीण-औद्योगीकरण हेतु पृथक से कोई प्रयास नहीं किया गया बल्कि इसे सामुदायिक विकास कार्यक्रम का एक अंग माना गया। परन्तु ग्रामीण उद्योगों की अपार रोजगार सम्भावना को ध्यान में रखकर योजना आयोग ने सामान्य उत्पादन कार्यक्रम के माध्यम से ग्रामोद्योगी उत्पादनों को सुरक्षा प्रदान करने की आवश्यकता पर बल दिया। इसमें निम्न शामिल हैं: (1) उत्पादन के क्षेत्र का आरक्षण, (2) बड़े उद्योगों की क्षमता के क्षेत्र पर रोक, (3) बड़े उद्योगों पर कर लगाना और (4) शोध तथा प्रशिक्षण में समन्वय।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना की रणनीति बुनियादी तथा भारी उद्योगों के विकास के अतिरिक्त लघु तथा पारम्परिक उद्योग वाले वर्तमान औद्योगिक ढांचों के द्वारा उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन करना था। इस योजना में सामान्य उत्पादन कार्यक्रम के अतिरिक्त छोटे एवं ग्रामीण उद्योगों के विकास हेतु एक स्वायत्त संस्था खादी और ग्रामोद्योग आयोग की स्थापना की गई, जो ग्रामीण क्षेत्रों में खादी और ग्रामोद्योगों के विकास के लिए योजना बनाती है, उसे विकसित एवं संगठित करती है तथा स्वयंसेवी संस्थाओं की स्थापना हेतु सहायता प्रदान करती है। इसके साथ छः अखिल भारतीय बोर्डों की स्थापना की गई। ये सभी बोर्ड सम्बद्ध परम्परागत उद्योगों की समस्याओं एवं उनके विकास तक ही सीमित है तथा इनके द्वारा ग्रामीण औद्योगिक विकास हेतु समन्वित नीति बनाने का प्रयास नहीं किया गया। इस योजना में देश के विभिन्न भागों में औद्योगिक

बस्तियां स्थापित की गई तथा औद्योगिक विस्तार सेवा के रूप में लघु उद्योग सेवा संस्थान स्थापित किए गए। जिनका उद्देश्य लघुस्तरीय उद्योगों को एक ही जगह संगठित कर उन्हें सामान्य सेवाएं प्रदान करना है तथा उनके उत्पादन में विशिष्टीकरण को बढ़ावा देना है।

रोजगार अवसर जारी रखने व नए रोजगार अवसर पैदा करने हेतु तृतीय, चतुर्थ और पांचवीं योजनाओं में ग्रामीण औद्योगिक विकास कार्यक्रम को दोहराया गया तथा इसमें सम्मिलित अनेक प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष कार्यक्रम अपनाए गए। इनमें ग्रामीण औद्योगिक परियोजना, पिछड़े क्षेत्रों तथा ग्रामीण क्षेत्रों के विकास की योजना तथा विकास केन्द्र बनाना प्रमुख है। परन्तु इन योजनाओं में सामान्य उत्पादन कार्यक्रम के कार्यान्वयन हेतु कोई ठोस कदम नहीं उठाया गया।

छठी एवं सातवीं योजना में औद्योगिक विकास की दर में वृद्धि करने हेतु ग्रामीण औद्योगीकरण के कार्यक्रम पर विशेष जोर दिया गया है। साथ ही उद्योगों के विकेन्द्रीकरण, शिल्पकारों के आय स्तर में वृद्धि, स्वरोजगार के नए अवसरों की खोज, उपक्रमियों का विकास, नई उत्पादन प्रविधियों का उपयोग, प्रशिक्षण तथा सुनियोजित प्रोत्साहनों के माध्यम से ग्रामीण एवं लघु उद्योगों का तेजी से विकास किया जाना है। इन उद्योगों की उत्पादकता में सुधार, गुणवत्ता में सुधार, लागत में कमी लाने के लिए तकनीकी विकास तथा आधुनिकीकरण पर विशेष बल दिया गया है। तीव्र औद्योगिक विकास हेतु प्रत्येक जिले में "जिला उद्योग केन्द्र" स्थापित किए गए हैं। ये केन्द्र छोटे एवं ग्रामीण उद्यमियों को एक छत के नीचे सभी प्रकार की सेवाएं और सहायक सुविधाएं जैसे कच्चे माल की उपलब्धि, मशीनरी की आपूर्ति, विपणन एवं वित्त दिलाने की व्यवस्था इत्यादि प्रदान करती है। इन योजनाओं में सामान्य उत्पादन कार्यक्रम के अन्तर्गत वस्तु आरक्षण नीति को भी अपनाया गया तथा लघु एवं ग्रामीण उद्योगों के लिए आरक्षित वस्तुओं की संख्या 500 से बढ़ाकर 850 कर दी गई है। परन्तु आरक्षण नीति का लाभ बड़े-बड़े उद्योगपतियों, नगरीय क्षेत्र व इसके आसपास स्थित उद्योगों को अधिक प्राप्त हुआ। इसकी असफलता का कारण पर्याप्त अनुवर्ती कार्यवाही की कमी तथा आरक्षण वस्तु सूची में बार-बार होने वाले परिवर्तन माना गया है।

तालिका-2 विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में ग्रामीण औद्योगीकरण पर किए गए व्यय को दिखाती है। प्रथम पंचवर्षीय योजना में ग्रामीण औद्योगीकरण पर 34 करोड़ रुपये व्यय किया गया था जो बढ़कर छठी पंचवर्षीय योजना में 1780 करोड़ रुपये हो गया। सातवीं योजना में 2753 करोड़ रुपये व्यय करने का प्रावधान है जो कुल परिव्यय का 1.5 प्रतिशत है जबकि द्वितीय और तृतीय पंचवर्षीय योजना में इस क्षेत्र को कुल परिव्यय का क्रमशः 4 प्रतिशत और 2.8 प्रतिशत प्राप्त हुआ था।

उपलब्धियां

पंचवर्षीय योजनाओं में ग्रामीण औद्योगीकरण हेतु अपनाए गए विभिन्न कार्यक्रमों एवं नीतियों के फलस्वरूप ग्रामीण औद्योगिक क्षेत्र के उत्पादन क्षमता, आय एवं रोजगार के स्तर में काफी वृद्धि हुई है। इस क्षेत्र ने 1973-74 में 13,600 करोड़ रुपये का उत्पादन किया था जो बढ़कर 1984-85 में 65,730 करोड़ रुपये का हो गया तथा सातवीं योजना के अन्तिम वर्ष 1989-90 का उत्पादन का लक्ष्य 1,00,100 करोड़ रुपये का रखा गया है। इस क्षेत्र में 1973-74 में 176.36 लाख व्यक्तियों को रोजगार प्राप्त था जिनकी संख्या 1984-85 में बढ़कर 315 लाख हो गई तथा 1989-90 तक इस क्षेत्र में 400 लाख व्यक्तियों को रोजगार प्राप्त होने का अनुमान है।

समस्याएं

ऊपर के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि रोजगार अवसरों के सृजन में ग्रामीण औद्योगिक क्षेत्र का महत्वपूर्ण योगदान रहा है तथा इस क्षेत्र के सबल विकास से ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाया जा सकता है लेकिन आज यह अनेक समस्याओं से ग्रस्त है। इनमें दुर्लभ कच्चे माल की कमी, वित्त और विपणन की सुविधाओं का अभाव तथा तकनीकी निपुणता का निम्न स्तर प्रमुख है।

प्रथमतः ग्रामीण औद्योगिक क्षेत्र को कच्चे माल की कमी का सामना करना पड़ता है। सरकार इस क्षेत्र के उद्यमियों को कच्चे माल की आपूर्ति राज्य लघु उद्योग निगम के माध्यम से करती है। लेकिन कच्चे माल की आवंटन एवं वितरण की पद्धति दोषपूर्ण होने के कारण इस क्षेत्र के उद्यमियों को अच्छे किस्म का कच्चा माल नहीं मिलता, साथ ही इन्हें उनकी कुल क्षमता की दृष्टि से सामान्यतः कम हिस्सा दिया जाता है। परिणामतः इन उद्यमियों को अपनी आवश्यकता का कच्चा माल चोर बाजार से ऊंचे दाम पर बड़े-बड़े उद्यमियों से खरीदना पड़ता है। इसके अतिरिक्त कच्चे माल के मूल्यों में होने वाले उतार-चढ़ावों के कारण भी ग्रामीण उद्यमियों खासकर दस्तकारों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

द्वितीय ग्रामीण औद्योगिक व्यवस्था कम बाजार मांग तथा सीमित विपणन व्यवस्था की समस्या से ग्रस्त है। ग्रामीण उद्योगों द्वारा उत्पादित वस्तु अमानकीकृत होते हैं और उनकी किस्म में भी परिवर्तन होता रहता है। जिस कारण इन उद्योगों

तालिका-2

ग्रामीण औद्योगिक क्षेत्र के लिए योजना परिव्यय

(करोड़ रुपये)

उद्योग	प्रथम योजना	द्वितीय योजना	तृतीय योजना	चतुर्थ योजना	पांचवीं योजना	छठी योजना	सातवीं योजना
1. खादी एवं ग्रामोद्योग	12.5	82.4	89.3	96.5	143.0	547.1	636.2
2. हथकरघा उद्योग	11.1	29.7	25.4	39.3	99.9	310.9	512.3
3. रेशम उद्योग	1.3	3.1	4.4	10.4	29.7	164.6	309.9
4. हस्तशिल्प	1.0	4.8	5.3	13.5	29.8	110.9	122.9
5. नारियल जटा	0.1	2.0	1.8	5.3	7.7	26.7	39.1
6. लघु उद्योग	5.2	56.0	113.1	127.3	221.7	616.1	1120.5
7. बिजली चालित करघे	-	2.0	1.5		3.2	4.2	11.8
योग :	31.2	180.0	240.8	292.3	535.0	1780.5	2752.7

में उत्पादित वस्तुओं की मांग कम होती है। दूसरी ओर ग्रामीण क्षेत्रों में अवस्थापनागत सुविधा की कमी के कारण उत्पादित वस्तुओं को बाजार तक पहुंचाने में ऊंची लागत आती है जिससे वस्तुओं के दामों में वृद्धि हो जाती है। फलतः ग्रामीण उद्यमी को उनकी वस्तु का उचित मूल्य नहीं मिलता है। साथ ही ग्रामीण उद्यमियों एवं दस्तकारों को राष्ट्रीय लघु स्तर उद्योग निगम, खादी ग्रामोद्योग आयोग, रेशम बोर्ड, जूट बोर्ड तथा अन्य विपणन समितियों द्वारा समुचित विपणन सूचना एवं सहायता प्रदान नहीं की जाती है, जिससे इनके द्वारा उत्पादित वस्तु का उचित मूल्य नहीं मिलता है तथा शहरी क्षेत्रों में बड़े उद्योगों के साथ प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ता है।

तृतीय, ग्रामीण उद्यमी साधारणतः आधुनिक तकनीकी ज्ञान तथा उत्पादन के आधुनिक तरीकों से अवगत नहीं होते हैं, जिससे इनकी उत्पादन लागत बढ़ जाती है तथा वस्तुओं की गुणवत्ता प्रायः घटिया किस्म की होती है, जो बाजार में टिक नहीं पाती है। इस दिशा में लघु उद्योग विकास संगठन अपनी सेवा संस्थाओं और विस्तार केन्द्रों के माध्यम से लघु इकाइयों को तकनीकी परामर्श एवं सहायता देते हैं। परन्तु लघु एवं ग्रामीण उद्योगों द्वारा इनकी उत्पादन सुविधाओं का पूर्ण उपयोग नहीं किया जाता है।

चतुर्थ, इनकी सभी समस्याओं के जड़ में पूंजी की कमी की समस्या निहित है। खासकर ग्रामीण उद्यमियों की वित्तीय स्थिति अच्छी नहीं होती है। इनके पास स्थिर व कार्यशील पूंजी की अत्यन्त कमी है, जिससे वे अपने उद्योग में आधुनिक तकनीकी ज्ञान का प्रयोग नहीं कर पाते हैं। साथ ही क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों, वाणिज्यिक बैंकों तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं से मिलने वाली वित्तीय सुविधा इनकी आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं रही है और न ही इनके कार्यकलापों की मात्रा के अनुपात में ही रही। निस्सन्देह, लघु इकाइयों के रुग्न होने का एक प्रमुख कारण अपर्याप्त तथा जटिल व लम्बी ऋण प्रक्रिया रहा है। पिछले कुछ वर्षों में रुग्न लघु इकाइयों की संख्या में तीव्र गति से वृद्धि हुई है। वर्ष 1980 के अन्त में इनकी संख्या 23,149 थी जो बढ़कर 1987 के जून में 158,226 हो गई। उपलब्ध आंकड़ों से पता लगता है कि 1980 में लगभग 2.8 प्रतिशत लघु इकाइयां रुग्न तथा 1.3 प्रतिशत निष्क्रिय थीं जो बढ़कर क्रमशः 11 प्रतिशत तथा 10 प्रतिशत हो गई हैं।

देश की आर्थिक एवं ग्रामीण समृद्धि हेतु ग्रामीण औद्योगिक क्षेत्र की समस्याओं का निराकरण अत्यन्त आवश्यक है। उचित दर पर पर्याप्त मात्रा में दुर्लभ कच्चे माल की सुनिश्चित आपूर्ति हेतु ग्रामीण एवं अर्द्ध-ग्रामीण क्षेत्रों में 'कच्चा माल भण्डार' की स्थापना करने तथा इसके वितरण प्रणाली को प्रभावी बनाने की आवश्यकता है। समुचित वस्तु विपणन हेतु ग्रामीण क्षेत्रों में विक्रय केन्द्र खोलने, प्रदर्शनी एवं मेले की व्यवस्था करने तथा वस्तुओं में प्रमाणीकरण के लिए अनुसंधान केन्द्र स्थापित करने की आवश्यकता है। उत्पादन लागत कम करने के लिए उद्यमियों को उचित मूल्य के आधार पर आधुनिक यंत्रों एवं औजारों की पूर्ति की जानी चाहिए तथा

ग्रामीण औद्योगिकी संस्थाएं, चल प्राद्यौगिकी और प्रशिक्षण इकाइयां स्थापित करने के कार्यक्रम पर जोर देना जरूरी है। इसके अतिरिक्त ग्रामीण उद्यमियों को पर्याप्त मात्रा में वित्त उपलब्ध कराने के लिए वित्तीय संस्थाओं के ऋण प्रक्रिया को सहज बनाने की आवश्यकता है। इस दिशा में सरकार ने मई 1986 में लघु उद्योग विकास कोष की स्थापना भारतीय औद्योगिक विकास बैंक द्वारा की है जो लघु उद्योगों के विकास, विस्तार और आधुनिकीकरण के लिए पुनर्वित्त की व्यवस्था करेगा। लघु उद्योगों में पूंजी निवेश को प्रोत्साहन करने के उद्देश्य से लघु उद्योगपतियों को एक समता-अंशपूंजी की सुविधा प्रदान करने के उद्देश्य से एक राष्ट्रीय समता कोष की स्थापना की गई है।

उपसंहार

उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय आर्थिक विकास की समस्या मूलतः ग्रामीण विकास की समस्या है। विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में तीव्र ग्रामीण विकास हेतु ग्रामीण औद्योगीकरण की नीति को एक महत्वपूर्ण उपाय के रूप में स्वीकार किया गया है। ग्रामीण औद्योगीकरण की नीति के द्वारा ही पिछले तीन वर्षों में आठ प्रतिशत वार्षिक औद्योगिक विकास दर प्राप्त कर सके हैं, जो एक अभूतपूर्ण उपलब्धि है। इससे राष्ट्रीय आय में वृद्धि और बेकार लोगों को रोजगार मिलने के साथ-साथ संतुलित क्षेत्रीय विकास के मार्ग प्रशस्त करने में भी मदद मिलती है। इन्हीं उपलब्धियों को देखते हुए योजना आयोग ने आठवीं योजना (1990-1995) के परिप्रेक्ष्य एवं विषयों पर एक टिप्पणी में ग्रामीण औद्योगीकरण की नीति का समर्थन नये रोजगार अवसर सृजन करने के लिए किया है। टिप्पणी में यह कहा गया है कि जब तक प्रति वर्ष लगभग 10 मिलियन नये रोजगार अवसर की दर से उत्पादक रोजगार का सृजन नहीं किया जाता तब तक बेरोजगारी सम्भलने वाली नहीं है...संगठित क्षेत्र जिसमें मध्यम और वृहद उद्योग भी आते हैं, वर्तमान में प्रति वर्ष औसतन 5 लाख लोगों को खपा सकता है परन्तु संगठित क्षेत्र में बहुत कम नये लोगों को काम मिलेगा। इसलिए कृषि व इससे सम्बन्धित गतिविधियों तथा ग्रामीण व लघु उद्योगों में नये रोजगार सृजन करने हेतु प्रयास करने की जरूरत है। अतः इससे स्पष्ट है कि आठवीं योजना में ग्रामीण औद्योगिक क्षेत्र का योगदान कम महत्व का नहीं होगा।

ग्राम व पोस्ट-सिसवा
भाया, मोतिहारी-845401 बिहार

लेखकों के लिए

रचना और अन्य प्रकाशनार्थ सामग्री भेजने वालों से अनुरोध है कि रचना भेजते समय ये कृपया इन बातों का ध्यान रखें:–

रचना संक्षिप्त एवं उसकी प्रस्तुति रोचक होनी चाहिए। इसमें उपलब्ध करायी गयी जानकारी अप्रकाशित और प्रमाणित होनी चाहिए।

रचना दो प्रतियों में डबल स्पेस में टाइप की हुई हो जो सात-आठ पृष्ठों से अधिक की नहीं होनी चाहिए। विषय प्रतिपादन में उपशीर्षकों का प्रयोग किया जाना चाहिए।

रचना के साथ ब्लैक एंड व्हाइट फोटो भी आमंत्रित हैं।

नया आर्थिक कार्यक्रम और ग्रामीण उद्योग

रफीक शास्त्री

जिस समाज में पूंजी की कमी, हाथ-पांव की मेहनत करने वालों की इफ़रात और जीवन की बुनियादी जरूरतों के पूरे होने को लाले पड़े हों, वहां की आर्थिक हालत में सुधार का शर्तिया तरीका छोटे और घरेलू उद्योग ही हो सकते हैं। कृषि प्रधान देश होने के कारण ग्रामीण आबादी को विकास की गतिविधियों का ज्यादा-से-ज्यादा फायदा पहुंचाने के लिए कृषि पर आधारित उद्योगों का जाल फैलाने की आज सबसे ज्यादा जरूरत है।

ऐसा नहीं है कि हमारी विकास योजनाओं में इन बातों को पूरी तरह अनदेखा किया गया है। मगर इतना जरूर है कि घरेलू और कुटीर उद्योगों को जितना महत्व दिया जाना चाहिए था वह नहीं दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि उन्नति और विकास के कई चरण पार करने के बाद भी शहर और गांव के बीच और इन दोनों समाज के अन्दर भी विषमताएं बढ़ीं।

आर्थिक परावलम्बन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

महात्मा गांधी ने देश की आजादी की लड़ाई के दौरान देश के नव-निर्माण के लिए रचनात्मक कार्यक्रमों की जो रूपरेखा प्रस्तुत की थी उसमें ग्रामीण और कुटीर उद्योगों को प्रमुखता दी गई थी। इसका ऐतिहासिक कारण भी रहा है। हिन्दुस्तान में कपड़ा उद्योग बहुत पुराने जमाने से काफी विकसित रहा है। मध्य युग में यहां के बेहतरीन कपड़ों की दुनिया के बाजारों में बड़ी कदर होने लगी थी। मगर इस बीच यूरोप में विज्ञान और टैक्नोलॉजी का बेतहाशा विकास हुआ। भारत और एशिया इससे अछूते रहे जिससे हमारे यहां के उद्योग पिछड़ने लगे। यूरोप के कई देश भारत पर अपना आधिपत्य जमाने की लड़ाई में लगे हुए थे। इस संघर्ष में ब्रिटेन विजयी रहा और तब से भारत एक नई ताकत के चंगुल में आ गया। देश के अन्दर किसी मजबूत केन्द्रीय सत्ता के अभाव में छोटी-छोटी रियासतों के बीच रस्साकसी बढ़ी। इसका फायदा उठाकर अंग्रेजों ने देश पर राजनीतिक शिकंजा मजबूत कर लिया। मगर उनके लिए यह राजनीतिक लड़ाई बड़ी आर्थिक लड़ाई का हिस्सा थी।

यूरोप की औद्योगिक क्रांति की मार

इंगलैंड में औद्योगिक क्रांति के बाद कपड़ा उद्योग ने भारी तरक्की की। अंग्रेजों को अपने कपड़ों की खपत के लिए नए-नए बाजारों की जरूरत थी। भारत पर वह अपना राजनीतिक आधिपत्य जमा चुके थे। अपने कपड़ों की खपत के लिए उन्होंने भारत के कपड़ा उद्योग पर बहुत बेदर्दी से कठोर प्रहार शुरू किया। इंगलैंड की मिलों में बना हुआ कपड़ा अंग्रेजों की राजनीतिक ताकत का सहारा लेकर भारत के बाजारों पर छाने लगा और भारत का हथकरघा उद्योग पंगु होकर रह गया।

स्वदेशी आन्दोलन

स्वदेशी आन्दोलन और महात्मा गांधी का आर्थिक पुनर्निर्माण कार्यक्रम इसी पृष्ठभूमि में उभरे। उस वक्त यह बात महसूस की गई कि आर्थिक मोर्चे पर लड़े बिना राजनीतिक लड़ाई नहीं लड़ी जा सकती। महात्माजी आजादी की लड़ाई के दौरान गांव में एक नई जान डालना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने चरखे, खादी और कुटीर उद्योगों का कार्यक्रम शुरू किया। आजादी के मतवालों का एक बड़ा वर्ग इन कामों में जी जान से जुट गया। इस बीच प्रथम महायुद्ध के छिड़ जाने के बाद भारत में भी मशीनी उद्योग की बुनियाद पड़ने लगी और मशीन तथा हाथ के काम के बीच एक प्रतियोगिता भी शुरू हो चली।

गांधीजी एशिया और अफ्रीका के देशों की गुलामी को पश्चिमी जगत में मशीनों के बेतहाशा इस्तेमाल से जन्मी विलासिता और भोग के जीवन का परिणाम मानते थे। यूरोप की औद्योगिक क्रांति भारत के आर्थिक परावलम्बन का कारण बनी थी। इस आर्थिक परावलम्बन को दूर करने के उद्देश्य से ही महात्माजी ने ग्रामीण और कुटीर उद्योगों पर जोर दिया जो स्वावलम्बी गांवों के उनके सर्वोदय समाज की कल्पना के अनुरूप भी था।

औद्योगिक विकास

देश की आजादी के बाद भी ये सारी बातें सरकार के ध्यान में रहीं। मगर देश को तेजी से आर्थिक प्रगति के मार्ग पर ले जाने के लिए विकास कार्यक्रमों की जो रूपरेखा बनी उसमें बड़े उद्योगों को विशेष महत्व मिला। घरेलू और कुटीर उद्योगों का विकास ज्यादातर व्यक्तिगत उद्यमशीलता पर ही छोड़ दिया

गया यद्यपि सरकार की ओर से उनके लिए भी कई प्रकार के संस्थागत ढांचे बनाए गए।

नया आर्थिक कार्यक्रम

अब देश में नई सरकार बनी है। इसने अपने आर्थिक कार्यक्रमों में विकेन्द्रीकरण पर विशेष बल दिया है। राष्ट्रीय मोर्चे ने चुनाव से पहले जो घोषणापत्र जारी किया था उसमें अब तक की आर्थिक प्रगति के आकलन के साथ भावी कार्यक्रमों की एक रूपरेखा भी देखने को मिलती है।

घोषणापत्र में कहा गया है कि राष्ट्रीय मोर्चे का विश्वास है कि व्यापक बेरोजगारी, गरीबी और गैर-बराबरी पिछले 40 वर्षों में सत्तारूढ़ दल द्वारा अपनाई गई गलत सामाजिक-आर्थिक योजनाओं का दुष्परिणाम है। ये 80 के दशक में और विशेषकर पिछले 4-5 वर्षों में बढ़ी है। मजदूरों को बेरोजगार करने वाली बड़ी मशीनों को प्रोत्साहन देने की नीति इसका स्पष्ट परिणाम है। उत्तर प्रदेश तथा बिहार जैसे गरीब राज्यों में इन नीतियों का प्रतिकूल असर हुआ है।

घोषणापत्र में वादा किया गया है कि राष्ट्रीय मोर्चे की सरकार ऐसी नीति अपनाएगी जो रोजगार के अधिक अवसर पैदा करे। आम जनता के उपयोग के लिए आवश्यक वस्तुओं और सेवाओं के सृजन तथा रोजगार के अवसर पैदा करने पर जोर दिया जाएगा। कृषि आधारित उद्योगों, ग्रामीण शिल्पियों के शिल्प पर आधारित ग्रामीण उद्योगों को जो विशेषकर महिलाओं और ग्रामीणों के लिए लाभकारी हों पूरा समर्थन दिया जाएगा। उनके लिए उधार विस्तार सेवाओं का प्रबन्ध किया जाएगा। आम उपयोग में आने वाली ऐसी चीजों का जिनका उत्पादन कुटीर और लघु उद्योग कर सकते हैं, बड़े उद्योगों द्वारा उत्पादन करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाएगा।

अब तक देश की 10 प्रतिशत अभिजात आबादी की भोग लिप्सा की पूर्ति को ध्यान में रखकर अपनाई गई विकास की रणनीति ने खास तौर से 80 के दशक में देश को अधिकाधिक विदेशी पूंजी की दासता के चंगुल में धकेल दिया। तकनीक के आधुनिकीकरण के नाम पर बड़ी पूंजी वस्तुओं और परियोजनाओं के उदार आयात ने आत्मनिर्भर औद्योगिक विकास में लगे देशी उद्यमियों के प्रयासों को अवरुद्ध किया है। इनमें इस्पात, रसायन, ऊर्जा, यातायात और इंजीनियरी जैसे महत्वपूर्ण उद्योग शामिल हैं। इसके साथ ही बड़े औद्योगिक घरानों और बहुराष्ट्रीय निगमों को बड़े पैमाने पर सभी प्रकार की उपभोक्ता वस्तुओं, खाद्य पदार्थ और तेल, साबुन आदि जैसी चीजों के उत्पादन के लिए इजाजत दी गई जिन्हें लघु उद्योग क्षेत्र बेहतर और लाभकारी ढंग से उत्पादित कर सकते हैं। तथाकथित अत्याधुनिक और उच्च टैक्नोलाजी को बेरोजगारी बढ़ाने वाले प्रयासों को अनदेखा कर, आयात किया गया है। इससे देश की बेरोजगारी और विदेशी पूंजी पर निर्भरता बढ़ी। घोषणापत्र में कहा गया है कि आत्मनिर्भरता का आधार मजबूत करने के लिए राष्ट्रीय मोर्चे की सरकार देशी तकनीक को बढ़ावा देगी और विदेशी टैक्नोलॉजी के आयात में कटौती करेगी।

नया वायदा

नई सरकार के सत्तारूढ़ होने पर राष्ट्रपति ने अपने अभिभाषण में देश को विश्वास दिलाया है कि नई सरकार जो नीतिगत पहल करना चाहती है उसकी रूपरेखा तैयार करने के काम में तत्परता से जुट गई है। सरकार विकास का ऐसा वैकल्पिक स्वरूप अपनाना चाहती है जो विकेन्द्रीकरण एवं सामाजिक न्याय के समाजवादी सिद्धान्तों पर आधारित हो।

सरकार की औद्योगिक नीति को स्पष्ट करते हुए राष्ट्रपति ने बताया कि सरकार उद्योगों का इस प्रकार विकास करना चाहती है जिससे रोजगार के ज्यादा-से-ज्यादा अवसर पैदा हों। छोटे और कृषि आधारित उद्योगों की इसमें महत्वपूर्ण भूमिका होगी। गांव के हस्तशिल्प पर आधारित ग्रामीण उद्योगों को विशेष महत्व दिया जाएगा और उनकी हर प्रकार से मदद की जाएगी।

नई सरकार ने अपनी प्राथमिकताओं में ग्रामीण उद्योगों को विशेष महत्व दिया है। अब यह आने वाला जमाना ही बताएगा कि इन पर किस प्रकार अमल किया जाता है और विकास की गति को बढ़ाते हुए आर्थिक विषमताओं को दूर करने के लिए कितनी मदद मिलती है?

8-बी, जोगाबाई,
जामिया नगर, नई दिल्ली-25

ग्रामीण उद्योगों में संगठन की आवश्यकता

कमल टावरी

उत्तर प्रदेश में बेरोजगारी की समस्या गम्भीर रूप धारण कर चुकी है। दिसम्बर, 1987 के रोजगार कार्यालय के आंकड़ों के आधार पर उत्तर प्रदेश बेरोजगारी के मामले में तीसरे नम्बर पर है। अब तक रोजगार कार्यालय में 29.63 लाख व्यक्ति अपना नाम बेरोजगारों के रूप में लिखा चुके हैं। स्पष्ट है कि यह एक गम्भीर समस्या है। वर्तमान समय में इन बेरोजगार व्यक्तियों को सरकारी तथा अन्य संगठनों में खपाना बहुत कठिन है। ऐसी स्थिति में देखना होगा कि गांव को कैसे आकर्षक बनाया जाए और शहरों की ओर पलायन के लिए लोगों में कैसे अरुचि उत्पन्न करके उन्हें निरुत्साहित किया जाए। वर्तमान समय में जो शहरों की आबादी बढ़ गई है, उसे भी रोकना है। ऐसी स्थिति में ग्रामीण उद्योगों का महत्व बढ़ जाता है।

ग्रामीण उद्योग की विशेषताएं

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि एक ओर वृहद तथा मध्यम श्रेणी के उद्योग हैं जो अपनी समस्याओं को दूर करने के लिए विभिन्न प्रकार से सक्षम हैं। उनके पास संसाधन की प्रचुरता के अतिरिक्त ज्ञान, सम्पर्क क्षमता, नीति निर्धारण में निपुणता, आवश्यक पहुंच तो है ही, साथ ही अन्य सभी प्रकार से वे सशक्त हैं। किन्तु दूसरी ओर ग्रामीण उद्योगों की ऐसी स्थिति है जिनके कारण उनका विकास अपेक्षित गति से नहीं हो पाता है। इसके मूल में विकास के निमित्त आवश्यक मूलभूत आधारों की कमी है फिर भी ग्रामीण उद्योग अपनी कतिपय विशेषताओं के कारण ग्रामीण अर्थव्यवस्था के अध्ययन में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं जो निम्न प्रकार हैं: 1. ग्रामीण उद्योग विकेन्द्रित होते हैं, 2. इनमें पूंजी तथा अन्य साधन अपेक्षाकृत काफी कम होते हैं, 3. इनमें विशिष्ट जानकारी का अभाव होता है, 4. भण्डारण क्षमता कम होती है, 5. स्पर्धा का अभाव रहता है साथ ही इनके द्वारा तैयार किया गया माल गुणात्मक रूप में अपेक्षित स्तर का नहीं होता है, 6. ग्रामीण उद्योग अधिकतर व्यक्तिगत रूप से चलाए जाते हैं।

उपर्युक्त बिन्दुओं को दृष्टिगत रखते हुए यह आवश्यक है कि ग्रामीण उद्योगों को विकसित करने की दिशा में प्रभावी कदम उठाये जाएं क्योंकि इनके अनेक लाभ हैं जैसे : 1. कम पूंजी में अधिक व्यक्तियों को रोजगार का अवसर उपलब्ध होना, 2. जिस स्थान विशेष पर या क्षेत्र में यह उद्योग स्थापित हो, वहां की स्थानीय आवश्यकता की पूर्ति, 3. प्रदूषण का कम होना, 4. गांव से शहरों की ओर पलायन को रोकना, 5. गांव में व्यर्थ जा रहे कच्चेमाल का लाभदायक सदुपयोग, 6. जटिलता रहित मशीन उपकरण द्वारा उत्पादन, 7. ग्रामीण पारम्परिक कला कुशलता को जीवन्त बनाए रखना।

इस परिप्रेक्ष्य में यह आवश्यक है कि ग्रामीण उद्योगों को और अधिक सुसंगठित बनाया जाए तथा उनको सशक्त आधार दिया जाए। चूंकि ये उद्योग छोटी-छोटी इकाइयों में होते हैं अतएव इनसे यह अपेक्षा करना कि अपने स्तर से ये सुसंगठित हो जाएंगे कदाचित वर्तमान संदर्भों में उचित नहीं होगा। इनके विकास तथा प्रचार के लिए शासन की प्रत्येक स्तर पर सहायता अनिवार्य है।

ग्रामीण उद्योग में न केवल परम्परागत उद्योग हैं वरन् ऐसे भी उद्योग हैं जिनका आवश्यकतानुसार मशीनीकरण भी किया गया है। आशा यह की जाती है कि तकनीकी के विकास के कारण आने वाले दिनों में इन उद्योगों में आवश्यकतानुसार मशीनों द्वारा कार्य करने का भी विस्तार होगा। फलस्वरूप मांग और पूर्ति में संतुलन बनाए रखने की जरूरत भी पड़ेगी। यह तब ही सम्भव हो सकता है, जब ग्रामीण उद्योगों का संगठन बनाया जाए। इससे विभिन्न योजनाओं के माध्यम से तथा अन्य स्रोतों से ग्रामीण उद्यमियों को सुविधाएं ठीक प्रकार से मिल सकेंगी और उनके अपने उद्योगों में जो कमियां होंगी उन्हें वे प्रभावी ढंग से दूर करने, समस्याओं का समाधान करने में सफल हो सकेंगे। कहने का तात्पर्य यह है कि ग्रामीण उद्योगों के लिए संगठन की आवश्यकता अपरिहार्य है, जो इनकी समस्याओं के समाधान तथा त्वरित और प्रभावशाली विकास के लिए उत्तरदायित्व का निर्वहन करेगा।

ऐसी स्थिति में विचारणीय है कि व्यक्ति उद्योग क्यों नहीं लगाना चाहता है। ग्रामीण उद्योग की उपरोक्त विशेषताओं के कारण यह भी स्पष्ट है कि जहां व्यक्तियों को बैठे बैठाए धनोपार्जन हो सकता है वह उसी कार्य को करना चाहता है। कुछ दिन पूर्व एक साक्षात्कार के दौरान नव युवकों से पूछा गया कि नौकरी की अपेक्षा वे ग्रामीण उद्योग क्यों नहीं लगाना चाहते हैं। साक्षात्कार के समय उन्होंने उद्योग न लगाने के निम्न कारण बताए:—

1. उद्योग लगाने का उनका पुश्तैनी पारिवारिक पेशा नहीं रहा।
2. उन्हें उद्योग की कोई जानकारी नहीं है।
3. उद्योग लगाने में उद्यमी को बार-बार दौड़ना पड़ता है। वित्तीय सहायता प्राप्त करने में, मशीनों के उत्पादित माल की बिक्री की समस्या है, प्रतिस्पर्धा की कठिनाई, इसके अतिरिक्त विभिन्न नियम कानूनों में स्वयं उद्यमी जकड़ जाता है। इधर उद्योग की जोखिम है मगर कोई किसी तरह का सहयोग नहीं देता है।
4. समुचित प्रशिक्षण का अभाव है।
5. पूर्व में रोजगार के लिए जो अध्ययन कराए गए हैं उनमें अधिकतर छोटे उद्यमी असफल हुए हैं।
6. उद्योग लगाने के लिए उनके पास समय नहीं है। अध्ययन और व्यवसाय की प्रतीक्षा के कारण अब बहुत विलंब हो गया।

राज्य के सभी क्षेत्रों से आए हुए लगभग 200 अभ्यार्थियों से साक्षात्कार करने पर आभास हुआ कि अधिकतर ये दिलचस्पी लेकर पढ़ते रहे और वे अब भी पढ़ रहे हैं क्योंकि उन्हें नौकरी नहीं मिली। वे बेकार न बैठे रहें, इसलिए अपने को अध्ययन में लगाए हुए हैं। बहुत कम ऐसे थे जो पढ़ने के अतिरिक्त व्यवसाय के रूप में कुछ न कुछ करने को तैयार हैं। यह बात सभी से सुनने को मिली कि नौकरी में सुविधाएं अधिक हैं, प्रोन्नति के निश्चित अवसर हैं एवं अन्य अनगिनत सुविधाएं, सेवाएं उपलब्ध हैं।

अभ्यार्थियों में कुछ ऐसे भी थे जिन्हें यदि सही मार्गदर्शन सही समय से दिया जाए तो ये उद्योग लगा कर अपने पैरों पर खड़े हो सकते हैं और उद्योग चलाकर सफल हो सकते हैं। कुछ के विचारों में बड़ी स्पष्टता दिखाई दी। वे स्वस्थ और स्फूर्तिवान दिखाई दे रहे थे तथा शारीरिक और बौद्धिक परिश्रम करने में सक्षम लग रहे थे।

किसी भी कार्य को सुचारू रूप से चलाने के लिए संगठन चाहिए और संगठन विभिन्न संस्थाएं बनाती हैं। खादी ग्रामोद्योग बोर्ड जैसी संस्था का तो निर्माण ही इसी उद्देश्य से हुआ है कि व्यक्तियों/संस्थाओं/सहकारी समितियों आदि के माध्यम से स्वावलम्बन की कल्पना को विकेन्द्रित रूप से सफल किया जा सके। खादी ग्रामोद्योग बोर्ड विभिन्न ग्रामीण कार्यक्रमों के लिए चूंकि 4 प्रतिशत दर पर ऋण देता है और इसमें ग्रामीण औद्योगीकरण के माध्यम से ग्राम विकास की कल्पना निहित है। इसी के साथ अन्य रचनात्मक कार्यक्रम भी जुड़े हैं। ग्रामीण औद्योगीकरण तभी सम्भव होगा जब उद्यमियों की कठिनाइयों को दूर कर उन्हें उद्योग हेतु प्रेरित किया जाएगा। उनकी सफलता का रहस्य निम्न बिन्दुओं पर आधारित है:

1. सही व्यक्तियों का चयन, 2. सही उद्योग का चयन, 3. सही प्रशिक्षण की व्यवस्था करना, 4. कच्चेमाल, पूंजी, देय सुविधाएं मुहैया कराना, 5. उद्यमी को समय-समय पर आने वाली कठिनाइयों के सम्बन्ध में मार्गदर्शन देना, 6. उनके द्वारा उत्पादित माल की बिक्री की व्यवस्था करना।

बेरोजगार नवयुवकों में नौकरी के प्रति आकर्षण दिखाई पड़ता है। वर्तमान परिस्थितियों में उन्हें खादी ग्रामोद्योग के कार्यक्रमों के माध्यम से स्वावलम्बी बना कर उद्योग लगाने के लिए प्रेरित करने का प्रयास किया जाना आवश्यक है। उन्हें पूरा करने में कई महत्वपूर्ण बिन्दु उठते हैं।

यह बात अपनी जगह सही है कि उद्यमी का चुनाव, सही प्रशिक्षण, सही समय पर विभिन्न सुविधाएं उपलब्ध कराकर उन्हें विपणन में मदद की जाए, तो उद्यमी उद्योग लगाने पर विचार कर सकता है। ऐसी स्थिति में निम्न बिन्दु अत्यन्त महत्वपूर्ण हो सकते हैं:

1. एक तरफ नौकरी का प्रलोभन है, दूसरी ओर विभिन्न परेशानियों के साथ जुड़ा हुआ उद्यमी बनाने का प्रयास है।
2. क्या वह व्यक्ति जो स्वयं उद्योग लगाने की क्षमता नहीं रखता है, उद्योग लगाने में अन्य नए उद्यमियों को प्रेरित कर सही रास्ते पर ले जाएगा?
3. गांव में चलने वाले उद्योगों के लिए सेवाएं उपलब्ध करना बहुत आवश्यक है। यह सुविधाएं उपलब्ध कराने वालों में खादी ग्रामोद्योग बोर्ड का महत्वपूर्ण योगदान है। ऐसी स्थिति में यह बहुत महत्वपूर्ण बिन्दु है कि बोर्ड के कर्मचारी/अधिकारी अपनी जिम्मेदारी को निभाएं। उद्यमी को उद्योग लगाने हेतु प्रेरित करें और आवश्यक सहायता सुविधा दिलाकर सक्षम बनाएं। यह तभी सम्भव है जब वे स्वयं भी कार्यक्रम के प्रति प्रेरित हों।

खादी तथा ग्रामोद्योग बोर्ड और अन्य विभिन्न संगठन ग्रामीण उद्यमियों के लिए सर्वांगीण सेवाएं देने के लिए कटिबद्ध हैं जो निम्न प्रकार हैं:

1. ग्रामोद्योगों का चुनाव विभिन्न तथ्यों के आधार पर, 2. समुचित तकनीकी प्रशिक्षण, 3. पूंजी व्यवस्था, कहां से और कैसे? 4. कच्चा माल, कहां से और किस मूल्य पर एवं भण्डारण व्यवस्था आदि, 5. उपयुक्त उपकरण लगाना, चलाना,

टूट-फूट की जानकारी एवं मरम्मत व्यवस्था आदि, 6. उत्पादन, 7. बाई प्रोडेक्ट्स का उपयोग, 8. गुणात्मक पहलू पर नियंत्रण एवं सुधार, 9. पैकिंग, आकर्षक सरलता से ले जाने योग्य एवं सस्ती, 10. विपणन किसको, कहां, किस मूल्य पर, 11. उत्पादन की प्रचार व्यवस्था, 12. लेखा-व्यवस्था, 13. इकाई की ऋण व्यवस्था, 14. उद्योग की आय से नियमित बचत, पुनर्विनियोजन एवं उद्योग का विस्तार।

यह स्पष्ट है कि खादी तथा ग्रामोद्योग बोर्ड चाहते हुए भी उपरोक्त सभी सुविधाएं नहीं दे सकता है। ऐसी स्थिति में देखना यह है कि खादी तथा ग्रामोद्योग के अतिरिक्त और कौन-कौन से संगठन हैं या बनाए जा सकते हैं, जो उद्यमी को सफल होने में मदद कर सकते हैं। ग्रामोउद्योगों के क्षेत्र में कार्यरत संगठन नाबार्ड सबसे पहले ग्रामीण उद्यमियों का बैंक है। यह संगठन मुख्य रूप से निम्न कार्य के लिए भारत सरकार द्वारा सक्रिय है। राष्ट्रीय स्तर पर खादी तथा ग्रामोद्योग कमीशन ग्रामीण उद्योगों के सर्वांगीण विकास के लिए गत वर्षों से कार्यरत है साथ ही राज्य स्तर पर प्रत्येक राज्य में खादी ग्रामोद्योग बोर्ड की स्थापना की गई है। खादी ग्रामोद्योग आयोग ग्रामोद्योगों के विकास के लिए निम्न प्रकार से सहायता सुविधा प्रदान करता है:

सामान्य क्षेत्र के लिए पूंजी निवेश की सहायता

चर्म उद्योग के कार्य के लिए भूमि क्रय हेतु 50 प्रतिशत अनुदान 50 प्रतिशत ऋण। शेष कार्यक्रमों के लिए भूमि खण्ड क्रय के लिए कोई सहायता नहीं। गोदामों के निर्माण के लिए शत प्रतिशत ऋण 75,000 रु. तक परिस्थितियों को देखते हुए। वर्कशेड निर्माण के लिए शत प्रतिशत ऋण प्रति वर्कशेड 75000 रु. की दर से। खादी कार्य के लिए बिना ब्याज ऋण। ग्रामोद्योग के लिए केवल 4 प्रतिशत ब्याज दर पर ऋण। भवन निर्माण के लिए शत प्रतिशत ऋण, औजारों, उपकरणों मशीनों आदि की आपूर्ति के लिए खादी में शत प्रतिशत ऋण बिना ब्याज और ग्रामोद्योगों में 4 प्रतिशत ब्याज। पालीवस्त्र के लिए 25 प्रतिशत अनुदान 75 प्रतिशत ऋण। ग्रामोद्योगों में उपकरणों के लिए 50 प्रतिशत अनुदान 50 प्रतिशत ऋण। कार्यशील पूंजी की सहायता लक्षांकों के आधार पर शत प्रतिशत ऋण। कारीगरों की सहकारी समितियों की पूंजी विस्तार ऋण प्रति शेयर होल्डर 1500 रु. और 1750 रु. की मर्यादा मानते हुए। स्वैच्छिक संस्थाओं की पूंजी विस्तार ऋण अधिक से अधिक 1.50 रुपया, आर्थिक सहायता दुर्गम आदिवासियों के अनुसूचित जाति के क्षेत्रों के लिए 50 प्रतिशत अनुदान, 50 प्रतिशत ऋण के आधार पर खादी कमीशन प्रोमोशनल योजनाओं, प्रदर्शनी, सम्मेलन, संगोष्ठियों परिवर्धन और प्रचार करने के लिए शत प्रतिशत अनुदान प्रत्येक योजना की गुणवत्ता के आधार पर उपलब्ध कराता है।

प्रशिक्षण खादी कमीशन द्वारा संचालित विद्यालयों द्वारा कारीगरों को प्रशिक्षण के लिए विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षण सत्र प्रारम्भ किए जाते हैं। प्रशिक्षार्थियों को छात्र वृत्ति के अतिरिक्त आने-जाने का व्यय भी उलपब्ध कराया जाता है। कुछ स्वयं सेवी संस्थाएं, जो खादी ग्रामोद्योग का प्रशिक्षण कराती हैं उन्हें शिक्षण शुल्क तथा दूसरे अनुदान भी उपलब्ध कराए जाते हैं। अनुसंधान के क्षेत्र में आयोग 5000 रु. तक अनुदान उन संस्थाओं को जो अनुसंधान परियोजना चलाना चाहती हैं, विपणन के लिए आवर्ती व्यय के लिए निर्धारित स्वीकृति दी जाती है। पुराने भण्डारों के नवीनीकरण के लिए भी वित्तीय सहायता उपलब्ध कराई जाती है। खादी कमीशन की बैंक फाइनेंस योजना, इसके अन्तर्गत संस्थाओं, सहकारी समितियों को बोर्ड द्वारा बैंक वित्त पोषण के लिए पात्रता प्रमाण-पत्र जारी किया जाता है जिसके अन्तर्गत कार्यक्रम संचालन करने वाली संस्थाओं/सहकारी समितियों को केवल 4% ब्याज देना पड़ता है। शेष ब्याज खादी कमीशन द्वारा उन बैंकों को दिया जाता है जो बैंक वित्त का प्रावधान करते हैं। जहां तक व्यक्तिगत उद्यमियों का प्रश्न है काटेज मैच में व्यक्तिगत उद्यमियों को बैंक फाइनेंस का प्रावधान है। पूंजी निवेश ऋण, भवन निर्माण में ऋण, पक्के निर्माण के लिए 10 वर्ष उपरान्त वापस किया जाता है। कच्चे निर्माण के लिए केवल 5 वर्ष का प्रावधान है। अब तक अनुभवों के आधार पर ऋण वापसी का यह प्रावधान सावधानी से अध्ययन करने योग्य है।

कार्यशील पूंजी की वापसी की अवधि खादी के लिए वर्किंग फण्ड पद्धति के कारण सीमा निर्धारित नहीं है। ग्रामोद्योग के लिए कार्यशील पूंजी ऋण वापसी की अवधि 5 वर्ष है। हिस्सा पूंजी और पूंजी संवर्धन ऋण वापसी की अवधि 5 वर्ष है। खादी कमीशन तथा खादी बोर्ड अपने लाभग्राहियों से ये अपेक्षा करते हैं कि इकाई की पूंजी की सुरक्षा के लिए ये अपने भवनों, व्यापारिक स्टाक उद्यम आदि का बाढ़, दंगा, दैवीय प्रकोप एवं आकस्मिक विपत्तियों से सुरक्षा एवं साधारण बीमा कराएं। खादी ग्रामोद्योग सेक्टर का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों का औद्योगीकरण की दिशा में विकास करना है। महिलाओं तथा परम्परागत कारीगरों को उनके रहने के स्थान पर रोजगार के अवसर मुहैया कराना, उद्यमियों एवं शिक्षित बेरोजगारों, नव युवकों को उद्यमिता संवर्धन की ओर अग्रसर करने के लिए प्रशिक्षण, वित्तपोषण, बैकवर्ड, फारवर्ड लिंकेज उपलब्ध कराना और सामान्य उद्देश्य वाले संगठनों से समन्वय

स्थापित करते हुए ग्राम विकास की प्रक्रिया को मूल्यवान बनाना है।

ग्रामीण बैंक भारत को आपरेटिव बैंक विशेष रूप से गरीबी की रेखा से नीचे के व्यक्तियों की सहायता के लिए कार्यरत हैं। 2 अक्तूबर, 1975 को ग्रामीण बैंकों की स्थापना हुई थी। इसके पूर्व सरकारी बैंक ही गरीबी की रेखा से नीचे के व्यक्तियों की सहायता में कार्यरत थे। ग्रामीण क्षेत्र में जहां कहीं भी राष्ट्रीयकृत बैंकों की शाखाएं थीं, ग्रामीण वहां जाने में हिचकिचाते थे तथा बैंक भी इतनी सफलतापूर्वक कार्यरत नहीं हो पा रहे थे। सहकारी बैंक विशेषकर ग्रामीण बैंकों की शाखाएं सुदूर ग्रामीण इलाकों में जब से खुली तब से गरीबी की रेखा से नीचे के व्यक्तियों को वे सभी वस्तुएं कर्ज पर प्राप्त होने लगीं जिसकी इन्होंने कभी कल्पना भी न की होगी। ये बैंक गांव में खुले गए हैं तथा इनमें कार्यरत कर्मचारी गांव-गांव व घर-घर जाकर गरीबी की रेखा के नीचे जीवन-यापन करने वाले व्यक्तियों के आर्थिक उत्थान के लिए कार्य कर रहे हैं। ग्रामीण बैंक सहकारी बैंक भारत के ग्रामीण अंचल में बसने वाले गरीब परिवारों में गरीब का जीवन स्तर उठाने में लगे हैं तथा बखूबी इस कार्य को निभा रहे हैं। पिछले आठ-दस वर्षों में इनके माध्यम से लाखों व्यक्तियों को गरीबी की रेखा के नीचे से ऊपर लाया गया है तथा भविष्य में इस दिशा में प्रयास किए जा रहे हैं।

इसी प्रकार हरिजन एवं समाज कल्याण विभाग के माध्यम से भी आर्थिक दृष्टि से दुर्बल लोगों को आगे बढ़ाने के कार्यक्रम संचालित किए जा रहे हैं। अन्य विभिन्न संगठनों से भी इसी प्रकार के लाभ गरीब ग्रामीण जन उठा सकते हैं।

भारत सरकार के समाज कल्याण विभाग का स्पेशल कम्पोनेंट प्रोग्राम हरिजन एवं अनुसूचित जातियों के शिल्पियों के लिए अत्यंत लाभदायक कार्यक्रम है। फुटवीयर, चमड़े के बटुए, ब्रीफकेस, सूटकेस और लैदर जैकेट, जयपुरी जूता, शान्ति निकेतन शैली का चर्म शिल्प आदि ऐसे काम हैं, जिनके लिए चर्मकारों अथवा उनके संगठनों को स्पेशल कम्पोनेन्ट प्रोग्राम के अंतर्गत केन्द्रीय व राज्य सरकार की वित्तीय सहायता उपलब्ध कराई जा सकती है। इसी प्रकार बांस, बेंत और दूसरी बांस की प्रजातियों से डलिया, टोकरी कलात्मक सजावटी सामान आदि बनाने वाले कारीगरों को भारत सरकार, उत्तर प्रदेश के हरिजन एवं समाज कल्याण विभाग के समन्वय वित्तीय सहायता के आधार पर स्पेशल कम्पोनेन्ट प्रोग्राम खादी बोर्ड के माध्यम से चलाए जा सकते हैं।

1. सामान्य सुविधाएं उपलब्ध कराना तथा विशेष जानकारी की व्यवस्था करना

ग्रामीण उद्योग के क्षेत्र में उपयुक्त तकनीकी सुधार तथा अनुसंधान होना आवश्यक है। इसके लिए तकनीकी जानकारी उपलब्ध कराना, काम करने के तरीकों में विशिष्टता लाना, एक दूसरे के अनुभव का आदान-प्रदान करना एवं चुने हुए माल की बिक्री की समस्याओं तथा परिवहन आदि की जानकारी संगठन के माध्यम से दी जा सकती है।

2. जिला प्रशासन से सम्बन्धित कार्यों का संपादन

किसी भी उद्योग के लिए जिला प्रशासन के बराबर सम्पर्क में रहना पड़ता है, क्योंकि शासन के विभिन्न कार्यक्रम जिले में चलाए जाते हैं। ग्रामीण उद्योग संगठन शासन के कार्यक्रमों को न केवल सक्रिय रूप से ले सकता है बल्कि उनके विस्तार में भी सहयोग दे सकता है।

3. शासन से सम्बन्धित समस्याएं संगठित रूप से दूर करना

शासन के विभिन्न विभाग—बिजली, बिक्री कर, स्थानीय संस्थाएं विभिन्न प्रकार की सेवाएं उद्यमियों को देते हैं। ऐसा भी देखने में आता है कि उद्यमियों से मूल्य तथा शुल्क लेने के उपरान्त भी उन्हें पर्याप्त सुविधाएं उपलब्ध नहीं हो पाती हैं। इन संगठनों के माध्यम से एक सुसंगठित कार्यक्रम की रूप रेखा बनाकर इन समस्याओं का समाधान किया जा सकता है। शासन स्तर पर विभिन्न नीतियां ग्रामीण औद्योगीकरण के सम्बंध में बनाई जाती हैं। इसके लिए यह आवश्यक है कि शासन स्तर पर नीति निर्धारण की पूर्ति तथा ग्रामीण उद्योग की समस्याओं की जानकारी की जाए तथा इससे सम्बंधित सुझाव भी ग्रामीण उद्यमियों से लिए जाएं। यदि ग्रामीण उद्योगों से सम्बंधित सुसंगठित फोरम उपलब्ध रहे, तो शासन को भी उनसे, सम्बन्धित समस्याओं आदि की जानकारी के साथ-साथ अच्छे सुझाव भी मिलेंगे, इससे कार्यक्रमों के नियोजन तथा निर्धारण की दिशा भी सही रहेगी।

यह ग्रामीण उद्यमी संगठन जहां एक ओर ग्रामीण उद्योगों को सामान्य सुविधाएं उपलब्ध कराने में प्रभावी भूमिका अदा करेगा वहीं दूसरी ओर भी कई क्षेत्र हैं, जिनमें यह महत्वपूर्ण योगदान कर सकता है।

संगठन का गठन कैसे हो?

कुछ व्यक्तियों/संस्थाओं द्वारा संगठन बनाए जाने की आवश्यकता की अनुभूति इसके गठित करने की दिशा में पहला कदम होता है। इसके लिए आवश्यक है कि सर्वप्रथम प्रत्येक जिले में उद्योग तथा क्षेत्र को दृष्टिगत रखते हुए ग्रामीण उद्योग

के संगठन बनाए जायें। इस दिशा में खादी ग्रामोद्योग बोर्ड योगदान दे सकता है, क्योंकि यह कार्य उनके प्रमुख कार्यों में से एक है। स्वैच्छिक संस्थाओं/सहकारी समितियों के माध्यम से खादी ग्रामोद्योग कार्यक्रमों को आगे चलाने के लिए जिला ग्रामोद्योग अधिकारी अपने जिले में ग्रामीण संगठन बनाने में महत्वपूर्ण योगदान कर सकते हैं।

जिला स्तर पर ग्रामीण उद्योग संगठन बनाने के पश्चात् मण्डल तथा प्रदेशीय स्तर पर भी उद्योगवार संगठन बनाने की कार्यवाही की जा सकती है। ग्रामीण औद्योगीकरण का कार्य जन जीवन से सीधा जुड़ा हुआ है। इसमें अनेक कठिनाइयां भी हैं। इसलिए पूरा प्रयास करके ऐसे व्यक्तियों को इस क्षेत्र में नेतृत्व देने के लिए ढूढ़ना होगा, जिनके माध्यम से यह कार्यक्रम कम समय में सफलतापूर्वक चलाया जा सके। इसमें महिलाओं/विकलांगों/सेवानिवृत्त फौजियों का योगदान भी लिया जाना चाहिए। ग्रामीण औद्योगीकरण की सफलता को सम्भव बनाने के लिए जरूरी है कि समन्वित रूप से हम सब मिलकर कार्य करें साथ ही कार्यरत संलग्न विभाग इसमें और अधिक सक्रियता से योगदान करें। ग्रामीण उद्योग संगठन उन व्यक्तियों द्वारा उद्यमियों के हित के लिए बनाया गया उनका अपना संगठन होगा।

उपरोक्त से स्पष्ट है कि सरकारी मशीनरी से अपेक्षित काम लेना पूरी तरह सम्भव नहीं है, क्योंकि सरकारी मशीनरी द्वारा कार्य करने का अपना ढंग अलग होता है। इस कार्य में ग्रामीण उद्योग संगठन अधिक प्रभावशाली ढंग से कार्य कर सकता है। इसमें स्वैच्छिक संगठनों के अतिरिक्त और भी विभिन्न संगठन कार्य कर सकते हैं। उद्यमियों की सफलता के लिए न केवल सक्रिय कदम उठाए जाएं बल्कि सफलता सुनिश्चित करने के लिए उस दिशा में प्रभावशाली कार्यवाही भी अपेक्षित है।

ग्रामोद्योग भवन,
8, तिलक मार्ग, लखनऊ-226001

'स्वागत! हे ऋतु राज बसन्त!'

राधेश्याम 'आर्य' विद्यावाचस्पति

करती मादकता संचारण
शीतल सुरभित मन्द समीरण।
मनमोहक है बना हुआ इस
प्रकृति विजयिनी का प्रति कण-कण।

दिक्मण्डल में बिखर रही हैं—
मधुऋतु की निधियां अनन्त।
स्वागत ! हे ऋतुराज बसन्त।।

नव जीवन पा करके सारा—
वातावरण प्रफुल्लित है।
नवल वधू-सी सजी हुई यह
धरती प्रमुदित, हर्षित है।

नव स्फूर्ति निर्झरित हो रही—
जागृति जाग्रत हुई ज्वलन्त।
स्वागत ! हे ऋतुराज बसन्त।।

आज हमें भी नवल प्रेरणा—
दे देना नव शक्ति महान।
जिससे सुरभित करें धरा को
करें धरित्री का कल्याण।

बिखराएं हम धरती के जन—
शान्ति सुरभि शुचि दिग्दिगन्त।
स्वागत ! हे ऋतुराज बसन्त।।

पहन बसन्ती चोला लाए—
युग, हम स्वर्ग विहानों का।
पथ अपनाएं मुदित मनों से
त्याग तथा बलिदानों का।

करें, धरा से, शौर्यवान बन—
हम अन्याय-अनय का अन्त।
स्वागत ! हे ऋतुराज बसन्त।।

मुसाफिरखाना,
सुल्तानपुर (उ. प्र.)

ग्रामीण अर्थव्यवस्था में ग्रामोद्योग की भूमिका

मनमोहन

ग्रामोद्योग का अर्थ है ग्रामीण क्षेत्र (जिसकी जनसंख्या 10 हजार या इसी के आस-पास से ज्यादा न हो) में स्थापित कोई उद्योग जो बिजली का इस्तेमाल करके या बिना इस्तेमाल किए कोई वस्तु उत्पादित करता हो या कोई सेवा करता हो जिसमें स्थिर पूंजी निवेश (संयंत्र, मशीनरी, भूमि और भवन में) प्रति कारीगर या कार्यकर्ता 15,000 रुपये से अधिक न हो। ऐसे उद्योग लघु एवं कुटीर उद्योगों के रूप में भी जाने जाते हैं।

कुटीर उद्योगों का अर्थ ऐसे उद्योगों से है जो घर में चलाए जा सकते हैं और लघु उद्योगों का आशय उन उद्योगों से है जिनकी आवश्यकता लघु हो। कुटीर उद्योग प्रायः ग्रामीण प्रकृति के होते हैं तथा कृषि में सहायक होते हैं। यहां तक कि इनका संचालन अंशकालिक रोजगार और कृषि व्यवसाय से बचे समय के उपयोग के लिए किया जाता है। ये उद्योग मानवीय श्रम पर निर्भर होते हैं और कुशल-अकुशल, स्त्री, बूढ़े, बच्चे सभी के लिए किसी न किसी रूप में रोजगार उत्पन्न करते हैं। इन उद्योगों में मशीनों का प्रयोग नगण्य होता है। चटाई बनाना, रस्सी बनाना, टोकरी बनाना, हाथ से चावल की कुटाई, हाथ कागज, सूत कातना, नारियल उद्योग, चर्म शोधन, तेल घानी, अनाज प्रशोधन, पापड़, बड़ी आदि बनाना, लकड़ी की नक्काशी, मिट्टी के बर्तन, कशीदाकारी, कालीन, खिलौने बनाना, रेशम कीट पालन, लोहे का काम आदि सभी इसी श्रेणी में आते हैं।

भारतीय अर्थव्यवस्था में कुटीर एवं लघु उद्योगों का स्थान प्राचीन काल से ही महत्वपूर्ण रहा है। मुख्यतः वस्त्र उद्योग, हस्तशिल्प उद्योग, हाथी दांत का काम आदि उद्योगों में भारत की ख्याति पूरे विश्व में फैली हुई थी। यह उन्नति ब्रिटिशकाल के आने तक चलती रही। किन्तु ब्रिटिश शासकों ने जो नीति अपनाई उसमें भारतीय कुटीर उद्योगों का ह्रास हुआ।

योजना आयोग के अनुसार "लघु एवं कुटीर उद्योग हमारी अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण अंग हैं जिनकी कभी भी उपेक्षा नहीं की जा सकती है।" लघु एवं कुटीर उद्योगों के महत्व के कारण ही 1977 एवं 1980 की औद्योगिक नीतियों की घोषणाओं में लघु एवं कुटीर उद्योगों को प्रमुख स्थान दिया गया है। 1976 तक लघु एवं कुटीर उद्योगों के लिए मात्र 180 वस्तुओं का उत्पादन सुरक्षित था, लेकिन 1977 की नीति में उनकी संख्या बढ़ाकर 504 की गई और फिर आगे चलकर 872 कर दी गई। सुरक्षा में कुछ फेर बदल किया गया और सुरक्षित वस्तुओं की संख्या 863 रह गई और हाल ही में सरकार ने और 13 वस्तुओं को सुरक्षा सीमा से निकाल दिया जिसके कारण वर्तमान में कुल 850 वस्तुएं लघु एवं कुटीर उद्योगों के लिए सुरक्षित रखी गई हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास पर बहुत बल दिया गया। सारणी द्वारा यह स्पष्ट किया जा रहा है कि विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में लघु एवं कुटीर उद्योगों पर कितना व्यय किया गया है :

सारणी—1

योजनाएं	योजनावधि	कुल खर्च
प्रथम	1951-56	42
दूसरी	1956-61	187
तीसरी	1961-66	241
वार्षिक	1966-69	126
चौथी	1969-74	243
पांचवीं	1974-79	593
वार्षिक	1979-80	256
छठी	1980-85	1980
सातवीं (लक्ष्य)	1985-90	2,753

सातवीं पंचवर्षीय योजना में इन उद्योगों से सम्भावित लक्ष्य का विवरण निम्न सारणी में दिया गया है :

महत्व

भारत जैसे विकासशील देशों की बड़ी समस्या आर्थिक जीवन स्तर को उठाकर विकास का मार्ग प्रशस्त करना व अपार जनशक्ति को रोजगार दिलाना है। यहां की 76 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में निवास करती है जिनका मुख्य पेशा कृषि है। परन्तु कृषि क्षेत्र में किसानों एवं मजदूरों को नियमित रूप से रोजगार नहीं मिल पाता है क्योंकि फसलोत्पादन की जितनी भी क्रियाएं होती हैं उनमें प्रायः निरंतरता नहीं पाई जाती है अर्थात उनमें साल भर रोजगार के अवसर प्राप्त नहीं होते हैं,

जो मौसमी बेरोजगारी एवं अर्द्ध बेरोजगारी की समस्या को जन्म देती है। फलस्वरूप प्रति व्यक्ति आय में कमी तथा ग्रामीण क्षेत्रों में निर्धनता की प्रधानता बढ़ जाती है। आज लगभग एक तिहाई लोग निर्धनता रेखा के नीचे जीवन यापन कर रहे हैं। इन सारी समस्याओं का निदान केवल कृषि विकास से सम्भव नहीं है, बल्कि इसके साथ-साथ विकेन्द्रित लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास कार्यक्रमों से यह सम्भव हो सकता है।

सारणी—2

क्र. उद्योग	उत्पादन मूल्य	रोजगार (लाख व्यक्ति)	निर्यात मूल्य
परम्परागत उद्योग	**1989-90**	**1989-90**	**1989-90**
1. खादी	300.00	20.00	5.90
2. ग्रामीण उद्योग	1700.00	30.00	
3. हथकर्घा	4600.00	98.13	485.00
4. कोशकीट पालन	510.00	24.25	190.00
5. दस्तकारी	5400.00	35.80	2591.00
6. नारियल जटा	170.00	9.23	32.00
योग	11760.00	217.41	3303.90

गांधीजी ने भी देश के आर्थिक विकास में लघु एवं कुटीर उद्योग के महत्व को जन-मानस के सामने रखते हुए कहा था—"जब तक हम ग्राम्य जीवन को पुरातन हस्तशिल्प के संबंध में पुनः जागृत नहीं करते, हम गांवों का विकास एवं पुनःनिर्माण नहीं कर सकेंगे। किसान तभी पुनः जागृत हो सकते हैं जब वे अपनी आवश्यकताओं के लिए गांवों पर ही निर्भर रहे न कि शहरों पर, जैसे कि आज।" उन्होंने आगे कहा था कि "बिना लघु एवं कुटीर उद्योगों के ग्रामीण किसान मृत हैं, वह केवल भूमि की उपज से स्वयं को नहीं पाल सकता, उसे सहायक उद्योग चाहिए।" गांधीजी ने ग्रामीण एवं आर्थिक विकास के लिए परम्परागत ग्रामोद्योग तथा लघु उद्योगों को स्थापित करने का सुझाव दिया जिनकी स्थापना कम से कम पूंजी विनियोग द्वारा की जा सकती है तथा ये उद्योग जन-मानस में सहयोग, समन्वय एवं आत्म निर्भरता की भावना जाग्रत करते हैं।

भारत में पूंजी का अभाव है, जबकि यहां जनशक्ति का बाहुल्य है। ऐसी स्थिति में लघु एवं कुटीर उद्योगों के माध्यम से कम पूंजी का विनियोग करके अधिक काम किया जा सकता है। आधुनिक ढंग से चलाने पर भी ग्रामोद्योग में प्रति व्यक्ति पूंजी के विनियोग में 1500 रुपये की आवश्यकता होती है, जबकि लघु उद्योग में यह औसत 5 से 8 हजार तथा बड़े उद्योगों में 80 से 90 हजार रुपये की आवश्यकता है।

लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास से पूंजी की कुशलता और गतिशीलता में वृद्धि होती है अन्यथा देश की बहुत-सी पूंजी बेकार और अल्प उत्पादन रूप में ही पड़ी रह जाए। लघु एवं कुटीर उद्योगों के माध्यम से अनेक बेरोजगार एवं अर्द्ध-बेरोजगार व्यक्ति रोजगार प्राप्त करते हैं। वर्तमान में कुटीर उद्योग पहले की अपेक्षा बढ़े हैं। 80 प्रतिशत की बढ़ोतरी से आज कुल 15.92 लाख कुटीर उद्योग काम कर रहे हैं। अब इस क्षेत्र में 107 लाख लोग रोजगार प्राप्त कर रहे हैं।

कुटीर एवं ग्रामीण उद्योगों की उत्पादन प्रणाली अत्याधिक सरल होती है। जटिलता के अभाव के कारण न तो अधिक तकनीकी ज्ञान प्राप्त विशेषज्ञ नियुक्त करने की आवश्यकता पड़ती है और न ही प्रबंधकीय ज्ञान की जरूरत महसूस होती है। इसके कारण उत्पादन कार्य, वस्तुओं के विपणन या हिसाब-किताब रखने के लिए कुशल कर्मचारियों की आवश्यकता नहीं होती।

कुटीर एवं ग्रामीण उद्योगों से भारत की परम्परागत कला की रक्षा होती है। भारत के विभिन्न राज्यों में कुटीर उद्योगों में विभिन्न प्रकार की वस्तुएं तैयार की जाती हैं। इससे इन वस्तुओं को उत्पादित करने वाले कारीगरों को रोजगार मिलता है एवं भारत की परम्परागत कला की रक्षा होती है।

भारत के कुल उत्पादन का करीब 50 प्रतिशत इन उद्योगों द्वारा उत्पादित किया जाता है। सातवीं योजना के अंत तक, कुटीर एवं ग्रामीण उद्योगों के उत्पादन का मूल्य एक लाख करोड़ रुपये से भी अधिक हो जाने की सम्भावना है।

उपरोक्त आधार पर यह कहा जा सकता है कि ग्रामीण समुदाय के लिए वहां के लोगों को रोजगार मुहैया कराने में लघु एवं कुटीर उद्योगों का महत्वपूर्ण स्थान है।

समस्याएं

इन उद्योगों के विकास के मार्ग में अनेक समस्याएं हैं, इनमें से कुछ प्रमुख समस्याएं निम्न हैं—

लघु एवं कुटीर उद्योग औद्योगिक रूग्णता जैसी गंभीर समस्या से ग्रसित हैं। इन उद्योगों के उद्यमियों के पास पूंजी की अत्यंत कमी होती है, जिससे वे अपने उद्योग में न तो आधुनिक तकनीकी ज्ञान का प्रयोग कर पाते हैं और न ही अपनी इकाई को क्रियाशील बनाए रख सकते हैं। इन उद्योगों को वाणिज्यिक

बैंकों तथा वित्तीय संस्थाओं से मिलने वाली वित्तीय सुविधा पर्याप्त नहीं होती है।

इन उद्योगों को कच्चे माल की कमी का भी सामना करना पड़ता है, क्योंकि अच्छी किस्म का कच्चा माल ऊंचे दाम पर बड़े-बड़े उद्यमी खरीद लेते हैं जिससे इन उद्योगों के उद्यमियों को अच्छी किस्म का कच्चा माल नहीं मिलता। साथ ही इन्हें ज्यादा मूल्य देना पड़ता है।

इन उद्योगों द्वारा उत्पादित वस्तुओं के विक्रय के लिए अच्छी सुविधाओं की कमी है, जिससे इनके द्वारा उत्पादित वस्तु का उचित मूल्य नहीं मिलता है। इन उद्योगों के समक्ष आधुनिक तकनीकी ज्ञान तथा उत्पादन के आधुनिक तरीकों का अभाव है। इससे इनकी उत्पादन लागत बढ़ जाती है तथा इन वस्तुओं की गुणवत्ता प्रायः घटिया किस्म की होती है जो बाजार में टिक नहीं पाती है। इसके अतिरिक्त इन उद्योगों के समक्ष और भी अन्य समस्याएं हैं। जैसे पर्याप्त शक्ति का अभाव, प्रशिक्षण का अभाव, बड़े उद्योगों से प्रतियोगिता, यातायात की समस्या, प्रमाणीकरण की समस्या, उद्यमियों के बीच साहस की कमी, इत्यादि।

सुझाव

लघु एवं कुटीर उद्योग की कठिनाइयों के मुख्य-मुख्य सुझाव इस प्रकार हैं—

हमारे देश में जो अनपढ़ व्यक्ति हैं जैसे बुनकर, कुम्हार आदि जो कि अपने काम में निपुण होते हैं लेकिन पैसा न होने के कारण उस कार्य का अच्छे ढंग से संचालन नहीं कर पाते हैं और पेशे के लिए ऋण भी नहीं लेना चाहते हैं क्योंकि एक तरफ तो ऋण लेने में दिक्कतें हैं, दूसरी तरफ एक बहुत बड़ी समस्या यह है कि उनके मन में वही पुरानी धारणा रहती है कि यदि एक बार ऋण लेंगे तो जीवन भर उसी में फंसे रहेंगे। अतः आवश्यकता इस बात की है कि उनको जागृत किया जाए एवं उनके मन में व्याप्त इस तरह की धारणा को समाप्त किया जाए। उनमें यह भावना पैदा की जाए कि ऋण लेकर वे अपने कारोबार का विस्तार कर सकते हैं, अपनी आय बढ़ा सकते हैं।

लघु एवं कुटीर उद्योगों का विकास करने के लिए हमें अपनी शिक्षा व्यवस्था में परिवर्तन लाना होगा, रोजगार परक शिक्षा का विकास करना होगा, तकनीकी शिक्षा का विस्तार करना होगा तथा क्लर्क पैदा करने वाली शिक्षा व्यवस्था को समाप्त करना होगा। आज आवश्यकता इस बात की है कि समाज में जन-जागरण किया जाए, व्यक्तियों को जानकारी दी जाए कि कहां पर कौन-सा उद्योग अधिक सफल होगा। उसके लिए कच्चा माल कहां से प्राप्त होगा तथा सरकार द्वारा ऐसे उद्योगों को कौन-कौन सी सुविधाएं प्रदान की जा रही हैं। यह कार्य भी इस समय उद्यमिता विकास संस्थान द्वारा जगह-जगह उद्यमिता विकास कार्यक्रमों का आयोजन करके दिया जा रहा है। लेकिन अभी कुछ अच्छे परिणाम सामने नहीं आए हैं। लेकिन यदि यह कार्यक्रम इसी तरह से चलता रहा तो निश्चित रूप से उद्योगों की स्थापना के क्षेत्र में वृद्धि होगी।

आजकल तो स्वतः रोजगार के अंतर्गत उद्योगों की स्थापना के लिए सरकार द्वारा बहुत-सी व्यवस्थाएं की गई हैं। सरकार द्वारा उन्हें वित्तीय सुविधाएं प्रदान की जाती हैं, छूट प्रदान की जाती है, ब्याज दर बहुत कम होती है, साथ ही उनको उच्च कोटि का कच्चा माल प्राप्त कराती है।

उनके उत्पादन के विक्रय के लिए भी सरकार व्यवस्था करती है जिससे उन्हें उत्पादन का उचित मूल्य प्राप्त हो सके। इसीलिए सरकार ने 850 वस्तुओं को केवल लघु एवं कुटीर उद्योगों के लिए सुरक्षित कर दिया है। इनका उत्पादन बड़े उद्योग नहीं कर सकते हैं तथा इनमें से बहुत-सी वस्तुएं सरकार स्वयं क्रय कर लेती है। इतनी सारी सुविधाओं के होते हुए भी हमारे देश के नागरिक इन सुविधाओं के लाभ नहीं उठा पा रहे हैं और इसका मुख्य कारण व्यक्तियों में जोखिम उठाने की कमी होना है। इसके लिए ग्रामीण व्यक्तियों में लघु एवं कुटीर उद्योग लगाने के लिए उन्हें प्रोत्साहित किया जाना अपेक्षित है।

इस प्रकार से सरकार ने अनेक पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से तथा अपने अन्य प्रयास से लघु एवं कुटीर उद्योगों के प्रति अपनी अभिरुचि दिखाई है तथा उनके विकास के लिए अनेक कार्य किए हैं। अतः भारत में इन उद्योगों का भविष्य निश्चित रूप से उज्ज्वल है।

द्वारा, पवन मेहता
नया पंजाबी पुरा, निकट टेलीफोन एक्सचेंज
मेरठ (उत्तर प्रदेश)

भारत में ग्रामीण औद्योगीकरण

डा. गिरिजा प्रसाद दुबे

गरीबी, बेकारी एवं अशिक्षा आदि समस्याएं दुनिया के सभी विकासमान देशों की नियति हो गई हैं। भारत भी इसी श्रेणी में आने वाला प्रमुख देश है। वर्तमान में भारत की सम्पूर्ण आबादी का 70 प्रतिशत भाग कृषि क्षेत्र पर निर्भर है। बंगला देश के बाद विकासशील देशों में इस दृष्टि से भारत का दूसरा स्थान है। लगभग 5 मिलियन अतिरिक्त कृषि मजदूर इस क्षेत्र पर निर्भर होते जा रहे हैं। इसके विपरीत ब्रिटेन, अमरीका, आस्ट्रेलिया, कनाडा, फ्रांस और जापान में क्रमशः 3, 4, 8, 8, 14 और 28 प्रतिशत जनसंख्या का क्रियाशील भाग कृषि क्षेत्र पर लगा हुआ है। साथ ही भारत में सकल राष्ट्रीय उत्पाद में कृषि की सहभागीदारी 45 प्रतिशत, उद्योग की 19 प्रतिशत तथा नौकरी की 28 प्रतिशत है जबकि ब्रिटेन, अमरीका, आस्ट्रेलिया, कनाडा, फ्रांस और जापान में कृषि की सहभागीदारी क्रमशः 3, 3, 9, 5, 6, 9 प्रतिशत ही है। ऐसी स्थिति में भारतीय सन्दर्भ में निश्चित रूप से कृषि क्षेत्र और अधिक अधिभार सहने की स्थिति में नहीं है।

अतः विकासमान देशों के लिए ग्रामीण औद्योगीकरण और रोजगार के नवीन साधनों को विकसित करना अपरिहार्य हो गया है। इससे न केवल ग्रामीण अर्थव्यवस्था में वैविध्य आएगा बल्कि कृषि विकास में और अधिक वृद्धि की सम्भावना बढ़ जाएगी। इससे ग्रामीण युवकों को रोजगार तो मिलेगा ही साथ ही कृषकों के खाली समय का उपयोग भी होगा।

ग्रामीण औद्योगीकरण की आवश्यकता एवं महत्व को स्वीकारते हुए संयुक्त राष्ट्र समिति के विचार उल्लेखनीय हैं। ग्रामीण औद्योगीकरण के महत्व को दुनिया के गरीबी से त्रस्त लोगों के कार्य और जीवन स्तर की दशा सुधारने के साधन के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। यह केवल विविध प्रकार के उत्पादों को तैयार करने के लिए आधुनिक तकनीक के उपयोग तक ही सीमित नहीं है। यदि इस तथ्य को ध्यान में नहीं रखा जाता है तो इसका तात्पर्य यह होगा कि बहुसंख्यक लोगों को अपनी दीन दशा पर जीने के लिए छोड़ दिया गया है।

प्राचीन भारत और ग्रामीण उद्योग

प्राचीन भारत में लघु एवं कुटीर उद्योग कृषि कार्य के साथ ही साथ पारम्परिक और पारस्परिक सेवाओं के रूप में जजमानी व्यवस्था के साथ जुड़े हुए थे। इसमें प्रमुख रूप से रुई, धुनाई, सूत कताई एवं कपड़ा निर्माण, कपड़े की सिलाई, मिट्टी के बर्तनों एवं अन्य सामग्री का निर्माण, चमड़े की सिझाई से लेकर जूते चप्पल आदि का निर्माण, बाल कटाई, कपड़े की धुलाई, कपड़े की रंगाई, आभूषण निर्माण, लकड़ी और लोहे के सामान का निर्माण।

अंग्रेजी शासन और ग्रामीण उद्योग

इतिहास इस बात का साक्षी है कि भारत में सूत कताई और हथकरघा उद्योग ग्रामीण स्तर पर कृषि क्षेत्र के साथ-साथ चलने वाले कुटीर उद्योग थे। दादा भाई नौरोजी के अनुसार अंग्रेजों के आने के पूर्व जनसंख्या का 40 प्रतिशत भाग कपड़ा निर्माण उद्योग में लगा हुआ था। यहां तक कि सन् 1813 तक हमारी जनसंख्या का 25 प्रतिशत भाग ग्रामीण शिल्प और उद्योग में लगा हुआ था। उस समय भारत शिल्प, फेब्रिक्स, हैण्डलूम के माल, हस्तशिल्प, हाथीदांत के सामान, कार्पेट, हीरे जवाहरात, जरी और कसीदे के सामान, फीते के सामान, कलात्मक वस्तुएं तथा कीमती पत्थरों के व्यापार के क्षेत्र में दक्षिण एशिया, यूरोप एवं ब्रिटेन तक प्रमुख निर्यातक देश था। उस समय रखरखाव, ढुलाई और अन्य खर्चों के बाद भी भारतीय सामान ब्रिटेन के बाजार में 50 से 60 प्रतिशत तक सस्ते बिकते थे। ब्रिटिश अधिकारी भारतीय माल पर 70 प्रतिशत से 79 प्रतिशत तक कर लगाते थे जिससे कि उसकी इतनी कीमत हो जाए कि बाजार में बिक न सके।

अंग्रेज, डच, पुर्तगाली एवं फ्रांसीसी पहले यहां व्यापार के लिए आए थे। प्रारम्भ में अंग्रेजों ने ईस्ट इंडिया कम्पनी स्थापित की। इसके माध्यम से उन्होंने पहले तो व्यापार किया फिर बाद में यहां के छोटे-छोटे राज्यों और रियासतों को जीत कर अपना शासन स्थापित किया। उनकी समझ में यह बात आ चुकी थी कि भारतीय वस्तुओं के बदले उनके पास देने के लिए कोई सामान नहीं है। इसलिए उन्होंने भारतीय औद्योगिक आधार को ही समाप्त करने के लिए दुरभि योजना को विकसित किया। इस क्रम में पहले भारतीय कारीगरों और शिल्पकारों को अनेकों प्रकार से हतोत्साहित किया गया तथा बाद में चलकर उन्हें अपने उत्पादों को कम से कम मजदूरी लेने के लिए बाध्य किया गया। मुर्शिदाबाद के तत्कालीन नवाब ने औपनिवेशवादी अंग्रेजों का कारीगरों को कम मजदूरी दिए

जाने के लिए विरोध किया। उनकी दृष्टि में जिन कारीगरों को चार रुपये मजदूरी दी जानी चाहिए उन्हें 1 रुपया दिया जाता था।

यह वही समय था जब फ्रांस, जर्मनी तथा ब्रिटेन में औद्योगिक क्रांति का दौर प्रारम्भ हो चुका था। इसके परिणामस्वरूप ब्रिटेन एवं अन्य स्थानों पर कपड़े और जूट की मिलें स्थापित की जाने लगीं। ऐसी स्थिति में अंग्रेजों ने भारत के अपने संपूर्ण शासित क्षेत्र के कारीगरों और शिल्पकारों को अपना पेशा छोड़ने के लिए बुरी तरह प्रताड़ित करना प्रारम्भ कर दिया। परिणामस्वरूप कृषि कार्य में लगे 60 प्रतिशत लोगों की संख्या बढ़कर 75 प्रतिशत और शिल्पकारों एवं कुटीर उद्योग में लगे लोगों की संख्या घटकर 25 प्रतिशत से 10 प्रतिशत हो गई।

स्वतंत्र भारत और ग्रामीण उद्योग

स्वतंत्रता के पूर्व से ही भारत में व्याप्त चार रोगों—गरीबी, बेकारी, अशिक्षा एवं अत्यधिक जनसंख्या तथा इसी प्रकार की अन्य सामाजिक समस्याओं से निपटने का एक ही रास्ता तीसवें दशक के कांग्रेसी राजनेताओं के मन में था। उनकी दृष्टि में आर्थिक विकास की तीव्रता से इन समस्याओं का समाधान स्वतः हो जाएगा। नियोजित विकास का जो आधारभूत ढांचा बनाया गया वह पश्चिमी नमूने और औद्योगीकरण पर आधारित था। विकास का पश्चिमी नमूना वहां की परिस्थितियों और कुछ मात्रात्मक वास्तविकताओं को ध्यान में रख कर (जैसे मानव शक्ति की कमी, स्रोतों की बहुलता तथा उत्पादित वस्तुओं की बिक्री का विस्तृत बाजार) बनाया गया था। उस समय के भारतीय नेता आर्थिक विकास के साम्यवादी और पूंजीवादी नमूने से मोहित थे। अतः स्वतंत्र भारत में विभिन्न क्षेत्रों के राष्ट्रीय आय के तुलनात्मक प्राथमिकता को बिना निश्चित किए हुए नियोजन की प्रक्रिया को प्रारंभ कर दिया गया। विकास का रास्ता सम्पूर्ण उत्पाद की दर में वृद्धि, प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि तथा औद्योगीकरण की गति में वृद्धि आदि पर आधारित माना गया। परन्तु यह कहने में संकोच नहीं है कि आज तक उक्त किसी भी समस्या पर पूर्णतः काबू नहीं पाया जा सका है।

स्वतंत्रता के बाद भारत में लगभग दो दशकों से ग्रामीण उद्योग शब्द का प्रयोग किया जाने लगा है। 'ग्रामीण उद्योग कार्य योजना' का निर्माण किया गया और इसके अन्तर्गत गांवों में औद्योगिक नगर भी बसाए गए। 50 के दशक के अन्त में और 60 के दशक के प्रारम्भ में यह योजना ग्रामीण कारीगरों को प्रशिक्षित करने, औजारों को विकसित करने तथा उत्पादन को बढ़ाने की थी। इसके साथ ही साथ आधुनिक तकनीक पर आधारित उद्योगों की लघुस्तरीय इकाइयां भी उन्हें उपयुक्त उत्पादन के लिए दिशा-निर्देशन हेतु स्थापित की गईं। इस प्रकार यह आधुनिक और परम्परागत उद्योगों का सहकार विकसित करने का एक प्रयास है। इस प्रयास का परिणाम आज खादी और ग्रामीण उद्योग, हथकरघा, हस्तशिल्प, जूट उद्योग, खाद्य और फल संरक्षण उद्योग, धातु पर आधारित लघु उद्योग तथा पारम्परिक ग्रामीण शिल्प उद्योग के रूप में देख सकते हैं। इस प्रकार के उद्योग के पीछे यह विचार छिपा है कि इन ग्रामीण उद्योगों को ऐसे ग्रामीण क्षेत्रों में स्थापित किया जाए जहां पर कि उनके उपयोग के लिए कच्चा माल उपलब्ध हो सके। साथ ही सरल तकनीक के द्वारा अधिक से अधिक ग्रामीणों के उपयोग की वस्तुएं प्राप्त की जा सकें।

कुटीर उद्योगों में कुछ उत्पादन प्रक्रियाएं ग्रामीणों द्वारा बड़े पैमाने पर सम्पन्न की जा सकती हैं। परन्तु इसमें बहुत सारा कार्य मशीनों के स्थान पर मानवाश्रित होगा। फल एवं खाद्यान्न संरक्षण उद्योग का उदाहरण इस सन्दर्भ में दिया जा सकता है। ग्रामीण इलाकों में महिलाएं खाली समय में फल एवं सब्जियों को सुखाने, चटनी, अचार और मुरब्बे बनाने का कार्य कर सकती हैं। चूना बनाने, पत्थर काटने और पेरने, ईंट तथा टाइल्स बनाने का कार्य ग्रामीण क्षेत्रों में प्राचीन काल से चला आ रहा है।

इस समय ग्रामीण युवकों को स्वरोजगार के लिए ट्राइसेम योजना प्रारम्भ की गई है जिसमें प्रारम्भिक स्तर पर एक विकास खण्ड से प्रतिवर्ष गरीब परिवारों से 40 युवकों को प्रशिक्षित करने की व्यवस्था है। इस प्रशिक्षण में युवकों को ग्रामीण उद्योगों के लिए आवश्यक दक्षता और सहायता प्रदान की जाती है। इस प्रकार इस योजना में प्रतिवर्ष 2 लाख ग्रामीण युवकों के प्रशिक्षण और उसके अनुरूप उन्हें उद्योग स्थापन हेतु आर्थिक सहायता देने की व्यवस्था है। प्रशिक्षण के अन्तर्गत उन्हें जेबखर्च के लिए 125 रु. की धनराशि भी प्रदान की जाती है। जहां पर प्रशिक्षण कार्य में कच्चा माल प्रयुक्त होता है उसके लिए प्रशिक्षणार्थी को 25 रु. प्रदान किए जाते हैं। इस प्रक्रिया में उनके द्वारा जो भी माल तैयार किया जाता है उसे प्रशिक्षणार्थी स्वयं बेचता है। इसके पीछे उसे व्यापार-वृत्ति तथा खरीद-बेच की प्रक्रिया में निपुणता दिलाने की भावना जुड़ी हुई है। उसे अपने उत्पाद को साथ लेकर घूम-घूम कर बेचने के लिए (हाकर की भांति) उत्साहित भी किया जाता है। बेचने की मूल्य का 25 प्रतिशत भाग प्रशिक्षणार्थी को दिया जाता है जिससे उसे उत्पादन के प्रति अपनापन लगे। इससे वे अपने उत्पाद के गुण और उत्पादन भी बढ़ाने के लिए उत्साहित हो सकते हैं।

प्रशिक्षणार्थी अपने प्रशिक्षण के अन्तर्गत 250 रुपये के औजारों का एक समूह (सेट) भी प्राप्त करता है। प्रशिक्षण के

दौरान उसकी प्रगति की निगरानी भी रखी जाती है। यदि वह इस प्रक्रिया में मान्य स्तर की योग्यता प्राप्त कर लेता है तो प्रशिक्षण समाप्ति के एक माह पूर्व ही उसे औजारों का सेट प्रदान कर दिया जाता है। इससे प्रशिक्षणार्थियों में प्रतियोगिता की भावना पनपती है। ऐसा देखा गया कि प्रशिक्षणार्थी प्रशिक्षण समाप्त होते ही अपने औजारों से कार्य करना प्रारम्भ कर देता है।

इस प्रकार के प्रशिक्षण के संबंध में स्वराज प्रकाश के दो अध्ययन उल्लेखनीय हैं। उन्होंने सोलन जिले के एक अध्ययन में पाया कि वहां की महिला डिप्टी कमिश्नर ने एक ग्रामीण युवक को उसी शहर के तकनीकी विशेषज्ञ के पास 6 महीने के प्रशिक्षण पर रखवा दिया। प्रशिक्षण काल के एक महीने के बाद ही वह रेडियो मरम्मत का कुछ कार्य करने लगा और प्रशिक्षक उसे मरम्मत के पारिश्रमिक में प्राप्त 10 रुपये में से 2 रुपये भी देने लगा। प्रशिक्षक की यह योजना थी कि प्रशिक्षण काल के समाप्त होने पर मरम्मत हेतु प्राप्त पारिश्रमिक में से 50 प्रतिशत भाग वह प्रशिक्षणार्थी को मजदूरी के रूप में प्रदान करेगा। प्रशिक्षण काल के समाप्ति के थोड़े ही दिन बाद प्रशिक्षणार्थी अपने स्वयं प्रयास से 300 रुपये प्रतिमाह की आय प्राप्त करने लगा। एक अन्य अध्ययन में यह पाया गया कि एक मोटर प्रशिक्षक के यहां तीन नवयुवक प्रशिक्षण हेतु रखे गए। प्रारम्भ में प्रशिक्षक ने उन्हें रहने के लिए बिना किराए का आवास प्रदान किया। तीनों ही प्रशिक्षणार्थी थोड़े ही दिनों में इन्जिन मरम्मत का कार्य सीख गए और परीक्षा में पास भी हो गए। अब वे सभी अलग-अलग मोटर मरम्मत की दुकान चला रहे हैं।

गृह उद्योगों की प्रोन्नयन नीति

भारत सरकार ने जुलाई 1980 में विशिष्ट ग्रामीण औद्योगिक नीति के अन्तर्गत यह निश्चय किया कि गांवों में इस प्रकार का औद्योगीकरण किया जाए जिससे कि ग्रामीण आर्थिक जीवन गतिशील और स्तरीय हो सके। इस नीति के अन्तर्गत हथकरघा, हस्तकला, खादी और इसी प्रकार के अन्य ग्रामीण उद्योगों को गतिशील बनाया गया। इस योजना में ग्रामीण औद्योगीकरण के प्रोत्साहन हेतु निम्नलिखित उद्देश्य रखे गए थे:—

(1) ग्रामीण उद्योगों की तकनीक और दक्षता का उन्नयन करना जिससे कि उनका उत्पादन बढ़ सके और इससे कारीगरों की आय में भी वृद्धि हो सके।

(2) उचित प्रशिक्षण और प्रचुर प्रोत्साहन के द्वारा व्यापक औद्योगिक आधार प्रदान करना।

(3) ऐसी व्यवस्था का तंत्र स्थापित करना जिससे उद्योगों को यंत्रवत् प्रोत्साहन मिलता रहे।

छठी योजना काल में इस सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योग के लिए 1780.45 करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई थी जिसे विस्तृत रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है:—

उद्योग	(रुपये करोड़ में)
(1) खादी एवं ग्राम्य उद्योग	547.09
(2) हथकरघा	310.09
(3) रेशम के कीड़े पालने पर	164.46
(4) हस्तशिल्प	110.90
(5) क्वायर उद्योग	26.72
(6) लघु उद्योग	616.10
(7) पावर लूम	04.15

सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985-90) में 2753 करोड़ व्यय करने का प्रावधान किया गया है।

विवेचन एवं सुझाव

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि भारत जैसे विशाल मानव शक्ति और प्राकृतिक सम्पदा वाले इस देश में ग्रामीण उद्योगों के विकास पर बहुत कम ध्यान दिया गया। इस क्षेत्र में जो भी प्रयास किया गया है उसे पर्याप्त नहीं माना जा सकता है। एक ऐसी दीर्घकालीन योजना बनाने की आवश्यकता है जिसमें मानवशक्ति को उपयोगी बनाने के लिए दक्षता विकास, व्यावसायिक निर्देशन के साथ ही साथ व्यवसाय चुनने, तकनीकी प्रशिक्षण की सुविधा हो। किसी भी देश के आर्थिक विकास को वहां के प्रशिक्षित जन ही गति प्रदान कर सकते हैं। इसके लिए विकास खण्ड से लेकर जिला, राज्य और केन्द्र स्तर तक सरकार को इस पर विशेष अभिरुचि दिखाने की आवश्यकता है।

यह भी देखा गया है कि ग्रामीण क्षेत्रों की औद्योगिक इकाइयां अपेक्षाकृत अधिक मृत्यु को प्राप्त होती हैं। अतः पूरे ग्रामीण औद्योगीकरण की योजना के बराबर मूल्यांकन और निगरानी की आवश्यकता है जिससे कि योजना की कमियों की जानकारी और प्रोत्साहन हेतु सुझाव भी मिलते रहें।

देश के ग्रामीण औद्योगीकरण के संबंध में गांधीवादी दृष्टि आज भी उतनी ही समीचीन लगती है। वे ग्रामीण उद्योगों को बड़े उद्योगों की होड़ में नहीं डालना चाहते थे। उनकी दृष्टि में जो ग्रामीण उद्योग उत्पादन करें उसे बड़े उद्योगों को नहीं उत्पादन करना चाहिए। साथ ही वे हर क्षेत्रों के लिए उच्च

स्तरीय तकनीक को भी आवश्यक नहीं मानते थे। भारत में कुछ क्षेत्रों जैसे तेल शोधक कारखाने एवं बिजली आदि के उद्योगों में उच्चस्तरीय तकनीक, अन्य क्षेत्रों में मध्य स्तरीय, और छोटे तथा कुटीर उद्योगों में परम्परागत तकनीक ही श्रेयस्कर है। साथ ही परम्परागत तकनीक में भी अच्छे परिणाम के लिए थोड़ा सुधार किया जा सकता है। धीरे-धीरे आए हुए सुधार से समायोजन की भी कोई समस्या नहीं होगी और न उसमें कोई अधिक धन ही लगाना पड़ेगा।

अतः भारतीय अर्थव्यवस्था में वही तकनीक सबसे उपयुक्त होगी जो अतिरिक्त जनशक्ति को समेट सके और प्राप्त साधनों से ही चलाई जा सके। तकनीक का उचित प्रयोग ही अकेले गरीबी, बेकारी, अशिक्षा और असीमित जनशक्ति की समस्या का हल हो सकता है।

32, अध्यापक निवास,
काशी विद्यापीठ,
वाराणसी

बैल गाड़ी से उसकी "जीवन गाड़ी" बखूबी खिंच रही है

जगत नारायण यादव

अपने जीवन की गाड़ी को खींचते-खींचते तंग आ चुका छपरा, सारण जिले के एकमा प्रखंड अन्तर्गत ग्राम घुरापाली जो जिला मुख्यालय से 46 कि. मी. दूर है, का 35 वर्षीय युवक चन्द्रदीप सिंह। वह जब अपने गांव के जन सेवक श्री पुरुषोत्तम पाण्डे को अपनी जीवन व्यथा सुनाने पहुंचा और अपनी लड़खड़ाती गाड़ी को सहारा देने की मांग की तो श्री पांडे ने कहा कि इस प्रकार की भीख और याचना से तो बेहतर यही है कि तुम सरकार से कर्जा लेकर कोई रोजगार धंधा शुरू कर लो जिससे कि तुम्हें दूसरों के आगे हाथ न फैलाना पड़े और तुम इस प्रकार के अपमानित जीवन जीने से बच सको।

पहले तो चन्द्रदीप को जन सेवक श्री पांडे की बात बुरी जैसी लगी किन्तु श्री पांडे के काफी समझाने-बुझाने के बाद चन्द्रदीप ने सरकारी सहायता से अपने नए जीवन की शुरुआत करने का संकल्प लिया और अपनी जीवन गाड़ी को खींचने के लिए उसने टायरवाली बैल गाड़ी का सहारा लिया।

वर्ष 1988-89 में चन्द्रदीप को जनसेवक श्री पांडे और प्रखंड विकास पदाधिकारी की मदद से टायर गाड़ी हेतु जिसे इस क्षेत्र में 'टायर' बोलते हैं, के लिए कुल 7500 रुपये का ऋण मिला जिसमें से 2500 रुपये की धनराशि अनुदान के रूप में थी। इस नए धंधे को चन्द्रदीप ने अपने जीवन की चुनौती मानते हुए अभूतपूर्व उत्साह एवं लगन से इसे आखरी अंजाम देने में जुट गया और कहना न होगा कि साल लगने के भीतर ही अपने बीस सदस्यीय परिवार के भरण-पोषण की गहन जिम्मेदारियों को वहन करते हुए भी ऋण की अधिकांश धनराशि चुकता कर दी और शेष बचे कर्ज के एक हजार रुपये को चन्द्रदीप कहता है कि शीघ्र ही चुकता कर दूंगा क्योंकि बरसात में टायर गाड़ी का धंधा बहुत धीमा पड़ जाता है।

चन्द्रदीप से जब यह पूछा जाता है कि सरकारी कर्जा लेने से पहले और आज के उसके जीवन में वह कितना अन्तर महसूस करता है तो प्रफुल्लित मुख मुद्रा में अपनी क्षेत्रीय बोली में कह उठता है:

"रउआ हमरा के पिछला जिनगी के बारे मत याद दिलाईं, काहे के कि अब उ जिनगी के सोचला पर लाज लगतआ। एक समय रउया उ भी रहल कि कर्जा के मारे हमार तो रोआं-रोआं बिक गइल रहल नू, अब त 20 परिवार के खर्चा चला के महीना भर में कम-से-कम एक हजार रुपया तक बच ही जा त/त उ जिनगी और ई जिनगी में तुलना का करे-के बा।"

50 रुपये से कम कीमत की नयी लुंगी और डोरा बनियान पहने और कन्धे पर डी. सी. एम. का तौलिया धारण किए हुए युवक चन्द्रदीप से जब यह पूछा गया कि तुम अपने जीवन से पूर्णतः संतुष्ट हो, तो उसका जवाब था कि यद्यपि उसकी गाड़ी मजे में खिंच रही है फिर भी इसी किस्म का और रोजगार करना चाहता है जिसके लिए उसने बी. डी. ओ. साहब के पास प्रार्थना पत्र दिया है। □

पर्वतीय क्षेत्र में: भेड़-बकरी पालन और ऊन कुटीर उद्योग के ह्रास के कारण

महिताप सिंह सजवान

प्राचीन समय में भारत वर्ष ऊन के क्षेत्र में सबसे आगे था लेकिन 19वीं सदी में ब्रिटिश शासन की कुरीतियों के कारण भारत में ऊन कुटीर उद्योग की स्थिति खराब होती गई। अंग्रेजों ने अपने देश से सूती वस्त्र भारत को निर्यात किए तथा यहां पर जितने भी कुटीर उद्योग थे, वे बन्द हो गए। इससे यहां पर बने ऊनी वस्त्रों की मांग कम होती गई, क्योंकि सूती वस्त्र ऊनी वस्त्रों की अपेक्षा देखने में अच्छे लगते थे। इस कारण यह हुआ कि लोग पश्चिमी देशों के फैशन में उतर आए। आज यह स्थिति हो गई है कि भारतवर्ष में जहां-जहां भी लोग भेड़-बकरी पालन एवं जगह-जगह पर ऊन कुटीर उद्योग चलाते थे सबने अपना व्यवसाय छोड़ दिया। वर्तमान में यदि कोई व्यक्ति भेड़-बकरी पालन करते भी हैं तो इन्हें अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए अच्छे दामों पर बेच देते हैं, जिससे इनका ह्रास होता जा रहा है और ऊन कुटीर उद्योग लुप्त होते जा रहे हैं। यही कारण है कि प्राचीन काल की हमारी सांस्कृतिक सभ्यता पनप न सकी। हजारों व्यक्ति जो इन कुटीर उद्योग व भेड़-बकरी पालन में लगे रहते थे, अब उन गांवों में बेरोजगारी की स्थिति स्पष्ट दिखाई देती है।

भारतवर्ष के उत्तर-पश्चिमी अंचलों में वर्तमान में सूक्ष्म रूप से भोटिया जाति के लोग भेड़-बकरी पालन एवं ऊन कुटीर उद्योग चलाते हैं। लगभग 65 प्रतिशत परिवार ऊन कुटीर उद्योगों में कार्यरत हैं। ये लोग अब भी भारतवर्ष की परम्परा को संजोये हुए हैं जो कि पर्वतीय ग्रामीण क्षेत्रों की 'रोजगार की प्रथम इकाई' मानी जाती है। क्योंकि उक्त व्यवसाय शिक्षित-अशिक्षित व्यक्ति सुचारू रूप से चला सकते हैं, इसी परिप्रेक्ष्य में ऊन कुटीर उद्योग को प्रोत्साहन देने के लिए राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने खादी एवं ग्रामोद्योग प्रारम्भ किया।

पर्वतीय क्षेत्र में ऊन कुटीर उद्योग और भेड़-बकरी पालन वर्तमान में क्यों ह्रास होते जा रहे हैं और इसके क्या कारण हैं? इस परिप्रेक्ष्य में जिला चमोली (गढ़वाल), ब्लाक नारायण बगड़ के अंतर्गत पट्टी-कड़ाकोट के छः गांव (रैंस, बेथरा, लोदला, तुनेड़ा, चोपता एवं भंगोटा) का सर्वेक्षण किया गया।

साक्षात्कार के दौरान उक्त गांव के परिवारों से यह पता चलता है कि 1950 के लगभग 60% परिवार भेड़-बकरी पालन और ऊन कुटीर उद्योग चलाते थे। लेकिन वर्तमान स्थिति को देखते हुए इन गांवों का औसत 7.27% है। इसे निम्न सारणी-1 में स्पष्ट दिखाया गया है :

सारणी-1

क्र. सं.	सर्वेक्षणगत गांवों का नाम	परिवारों की संख्या	भेड़-बकरी पालन करने वाले परिवारों की संख्या	प्रतिशत
1.	रैंस	95	4	4.21
2.	बेथरा	45	6	13.33
3.	लोदला	42	3	7.14
4.	तुनेड़ा	32	3	9.38
5.	चोपता	150	5	3.33
6.	भंगोटा	35	8	22.88
	योग	399	29	7.27

सारणी-1 सबसे अधिक भेड़-बकरी पालन करने वाले परिवारों की संख्या का प्रतिशत भंगोटा गांव में है जबकि सबसे कम परिवारों की संख्या का प्रतिशत चोपता गांव में है। इससे स्पष्ट होता है कि भंगोटा गांव जंगल के समीप है। जिससे भेड़-बकरियों को सरलता से चारा उपलब्ध हो जाता है, जबकि चोपता गांव जंगल से दूर होने के कारण यहां के परिवारों को भेड़-बकरी पालने में अधिक कठिनाई पड़ती है। अर्थात् कहा जा सकता है कि गांव के समीप जंगल का न होना ऊन कुटीर उद्योग व भेड़-बकरी पालन का ह्रास का मुख्य कारण है।

साक्षात्कार के दौरान उक्त परिवारों से यह भी अनुभव किया गया कि अधिकतर व्यक्ति पहले की अपेक्षा अधिक शिक्षित होने के कारण उक्त गांवों से रोजगार की तलाश में यहां के शिक्षित व्यक्तियों का मैदानी क्षेत्रों की ओर पलायन का होना है। इसलिए अधिकतर परिवारों ने भेड़-बकरी पालन व्यवसाय छोड़ दिया है। यही नहीं, यहां पर अच्छी नस्ल की भेड़-बकरियां नहीं पाई जाती जिससे ऊन कुटीर उद्योग का

ह्रास होता जा रहा है।

उक्त कारणों से यह भी अनुभव किया गया है कि जो परिवार भेड़-बकरी पालन करते हैं वे सभी परिवार ऊन कुटीर उद्योग नहीं चलाते। गांवों की स्थिति सारणी-2 में स्पष्ट होती है :

सारणी-2

क्र. सं.	गांव का नाम	भेड़-बकरी पालन करने वाले परिवारों की संख्या	ऊन कुटीर उद्योग चलाने वाले परिवारों की संख्या	भेड़-बकरी की बिक्री एवं ऊन कुटीर उद्योग से प्राप्त आय (रु. में)	प्रति परिवार औसत वार्षिक आय (रु. में)	रोजगार में लगे व्यक्तियों की संख्या
1.	रैंस	4	2	12,000.00	3,000.00	9
2.	बेथरा	6	4	22,500.00	3,750.00	12
3.	लोदला	3	1	5,100.00	1,700.00	5
4.	तुनेड़ा	3	1	3,400.00	1,133.00	5
5.	चोपता	5	1	4,500.00	900.00	7
6.	भंगोटा	8	6	32,000.00	4,000.00	15
	योग	29	15	79,500.00	14,483.00	53

सारणी-2 से स्पष्ट है कि रैंस गांव में 4 परिवार में से 2 परिवार ऊन कुटीर उद्योग चलाते हैं। ये परिवार पंखी, दरी, दौशाला बुनते हैं जबकि अन्य दो परिवार ऊन कुटीर उद्योग का कार्य नहीं करते। इसी प्रकार बेथरा गांव में 3 में से 1 परिवार, तुनेड़ा गांव में 3 में से 1 परिवार, चोपता गांव में 5 में से 1 परिवार एवं भंगोटा गांव में 8 में से 6 परिवार ऊन कुटीर उद्योग को चलाते हैं। ऊन कुटीर उद्योगों की कमी का कारण उन्हें उचित प्रशिक्षण का न मिलना भी है।

सारणी से यह भी स्पष्ट होता है कि भंगोटा गांव में भेड़-बकरी पालन एवं अन्य कुटीर उद्योग चलाने वाले प्रति परिवार की औसत आय 4,000 रुपये प्रतिवर्ष है जबकि चोपता गांव में 900 रुपये प्रतिवर्ष है। इससे स्पष्ट है कि भंगोटा गांव की औसत प्रति परिवार आय, चोपता गांव की अपेक्षा अधिक है, जबकि अन्य गांव क्रमशः रैंस, बेथरा, लोदला एवं तुनेड़ा में प्रति परिवार औसत आय क्रमशः 3,000 रुपये, 3,750 रुपये, 1,700 रुपये एवं 1,133 रुपये प्रतिवर्ष है।

सारणी से यह भी स्पष्ट है कि रोजगार में लगे कुल 53 व्यक्ति हैं, जिसमें से भंगोटा गांव में 15 व्यक्ति भेड़-बकरी पालन और ऊन कुटीर उद्योगों में कार्यरत हैं। जबकि अन्य गांव रैंस, बेथरा, लोदला, तुनेड़ा और चोपता में क्रमशः 8, 12, 5, 5 और 7 व्यक्ति कार्यरत हैं, अर्थात् भेड़-बकरी पालन एवं ऊन कुटीर उद्योग के क्षेत्र में भंगोटा गांव आर्थिक एवं रोजगार की दृष्टि से अधिक सम्पन्न है।

उक्त गांवों में ऊन कुटीर उद्योग का ह्रास होने का एक मुख्य कारण भेड़ों की अपेक्षा बकरियों की संख्या का अधिक होना भी है। इसे सारणी-3 से स्पष्ट दिखाया गया है :

सारणी-3

क्र. सं.	गांव का नाम	भेड़ों की संख्या	बकरियों की संख्या	योग
1.	रैंस	90	120	210
2.	बेथरा	140	170	310
3.	लोदला	35	25	60
4.	तुनेड़ा	55	58	113
5.	चोपता	80	95	175
6.	भंगोटा	200	210	410
	योग	600	678	1,278

सारणी-3 से स्पष्ट है कि उक्त सर्वेक्षणगत गांवों में भेड़ों की अपेक्षा बकरियां अधिक हैं क्योंकि यहां पर 600 भेड़ें तथा 678 बकरियां हैं। रैंस गांव में 210 भेड़ें एवं बकरियां हैं जिनमें से 90 भेड़ें तथा 120 बकरियां उक्त 4 परिवारों में हैं। यदि प्रति परिवार की दृष्टि से देखें तो प्रति परिवार औसत 30 बकरियां आती हैं जबकि भेड़ों का प्रति परिवार औसत 22.5 भेड़ें आती हैं। इसी प्रकार बेथरा, तुनेड़ा, चोपता एवं भंगोटा गांव में क्रमशः 310, 113, 175 एवं 410 कुल भेड़-बकरियां हैं जिनमें बकरियों की संख्या भेड़ों की अपेक्षा अधिक है जबकि लोदला गांव में भेड़ ज्यादा हैं। इससे स्पष्ट है कि यहां पर लोग बकरियों को पालना आय एवं ऊन उद्योग की दृष्टि से उचित नहीं समझते तथा अन्य परिवार जिनके पास बकरियां अधिक हैं, मीट की दृष्टि से उनका पालन करते हैं। क्योंकि यहां पर मीट की अधिक मांग है जिससे ये लोग बकरियों को अधिक पालते हैं। जिसका प्रभाव ऊन कुटीर उद्योग पर पड़ता है क्योंकि बकरियों की ऊन आय की दृष्टि से कम उपयोगी होती है तथा इनके ऊन से अच्छे वस्त्रों का निर्माण नहीं होता। जिस कारण यहां पर कुटीर उद्योगों में अधिक कमी आई है।

सर्वेक्षण के दौरान यह अनुभव किया गया कि यहां पर सरकार द्वारा आई.आर.डी.पी. के अन्तर्गत जो सहायता ग्रामीणों को भेड़ पालन के लिए दी जा रही है वास्तव में इस क्षेत्र के लोग उस ऋण का सदुपयोग नहीं करते। अर्थात् ये लोग अपनी ही पुरानी भेड़ों को दिखाकर सरकारी धन का दुरुपयोग करते हैं। जिसका प्रभाव यह होता है कि आज भी ये लोग आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं। यही नहीं ऊन कुटीर उद्योगों का विकास सरकारी सहायता के बावजूद भी ह्रास की ओर होता जा रहा है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि उक्त कारण समस्त उत्तर-पश्चिमी पर्वतीय क्षेत्र के अंचलों में एक समान दिखाई देते हैं। जिस कारण वर्तमान में समस्त पर्वतीय अंचल में ऊन कुटीर उद्योग विलुप्त होते जा रहे हैं।

द्वारा—हुकमसिंह सजवान, वन विभाग, शीशम बाग, चीड़ डिपो, हल्द्वानी—नैनीताल, (उत्तर प्रदेश)

गांवों के परम्परागत धन्धे और उनका बदलता स्वरूप

ओम प्रकाश तोषनीवाल
जितेन्द्र कुमार

हमारी आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक प्रगति के मूलाधार हमारे छः लाख गांव हैं जिनमें जनसंख्या का लगभग तीन चौथाई भाग निवास करता है। सही मायनों में देश की प्रगति इन गांवों के आगे बढ़ने में ही निहित है। यदि ग्रामवासियों में सही राजनैतिक चेतना पैदा होती है तो इससे लोकतंत्र मजबूत बनता है। यदि सार्वभौम, सर्वकाल जीवन मूल्यों को गांवों में बनाए रखने का निरन्तर प्रयास किया जाए तो एक स्वस्थ और सुदृढ़ समाज की कल्पना की जा सकती है। इसी प्रकार से यदि गांवों को आर्थिक दृष्टि से एक सीमा तक स्वावलम्बी रखने की आर्थिक नीति पर हम चल सकें तो इससे गांव की सम्पदा और प्रतिभाओं का नगरों की ओर होने वाले पलायन को रोका जा सकता है और इस प्रकार इन गांवों को सही रूप में विकसित होने एवं आगे बढ़ने का एक सुअवसर प्रदान किया जा सकता है। गांवों को आगे ले जाने की यह धारणा केवल गांवों के ही हित में नहीं है वरन् यह समूचे राष्ट्र के हित में है। इसका सबसे स्वर्णकर पहलू तो यह है कि मानवता के हित के साथ-साथ विश्व शांति की दिशा में एक ठोस कदम भी है।

गांवों में जीविका का प्रमुख स्रोत कृषि है। आज भी प्रति दस में से सात व्यक्ति कृषि पर निर्भर हैं। 1901 से 1981 की अवधि में इस अनुपात में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया है। शेष बची जनसंख्या या तो ग्रामीण उद्योग-धन्धों से जुड़ी रही अथवा सेवा कार्यों से। इतिहास इस बात का साक्षी है कि हमारे ये गांव एक लम्बे समय तक आत्मनिर्भर बने रहे और इन्हीं के बूते विदेशी इतिहासकारों ने भारत को 'सोने की चिड़िया' की संज्ञा से विभूषित भी किया। लेकिन आज स्थिति सर्वथा विपरीत है। हमारे ये गांव आगे बढ़े हैं अथवा पतन की ओर गए हैं इस बात पर कोई मत निश्चित करने में विशेष सावधानी एवं संतुलन रखने की आवश्यकता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हमारे गांवों ने काफी प्रगति की है लेकिन शहरों में अधिक प्रगति होने के कारण गांव अभी भी काफी पिछड़े हुए हैं। तभी तो आज भी ग्रामीण क्षेत्रों की 70 प्रतिशत जनसंख्या घोर गरीबी की स्थिति में जी रही है।

गांवों में व्याप्त घोर गरीबी के लिए यों तो कितने ही कारण उत्तरदाई हो सकते हैं, लेकिन इनमें से एक सबसे बड़ा कारण गांवों के उन परम्परागत धन्धों का ह्रास है जिनसे गांवों की एक चौथाई जनसंख्या जुड़ी हुई थी और जिसने ग्रामीण अर्थव्यवस्था को एक संतुलन की स्थिति में बनाए रखा था। ऐसे ही धन्धों में बढ़ई, लोहार, कुम्हार, बुनकर, मोची, छीपी, धुनाई, नाई, धोबी, मेहतर आदि का उल्लेख किया जा सकता है। वस्तुतः ये धन्धे ग्रामीण अर्थव्यवस्था रूपी माला के दानों के समान थे और जिस माला का मेरु हमारी कृषि थी। इन धन्धों में बिखराव के कारण ही आज यह माला टूट चुकी है, फलतः इसका प्रभाव खेती के साथ-साथ समूची ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर पड़ा है। एक प्रकार से ये सभी धन्धे आज मरणावस्था में हैं जो धीरे-धीरे प्रायः लुप्त-से होते जा रहे हैं अथवा अपने बदलते स्वरूप में ऐसी स्थिति को प्राप्त हो रहे हैं, जिनसे गांवों को लाभ न पहुंचकर नगर एवं कस्बे लाभान्वित हो रहे हैं। यह सब इसीलिए कि इन धन्धों में लगे लोग अब धीरे-धीरे गांव छोड़कर शहरों की ओर पलायन करने की प्रक्रिया में लगे हुए हैं, जहां उन्हें रोजगार की प्राप्ति के साथ-साथ आय भी अच्छी हो जाती है। लेकिन इसका कुल मिलाकर ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर जो प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है, उसके मूल्यांकन करने की ओर अभी हमारे योजनाकार उदासीन ही हैं। दूसरी ओर पलायनवाद के कारण नगरों की जो समस्याएं बढ़ी हैं, उनके बारे में हमारी सरकार और योजना आयोग अवश्य चिन्तित से प्रतीत होते हैं। क्या यह गांव के साथ, कहना चाहिए कि देश की तीन-चौथाई जनसंख्या के साथ, हमारा सौतेला व्यवहार नहीं है? यह शुभ लक्षण है कि ग्रामीणवासी अब इस स्थिति को समझने लगे हैं।

ग्रामीण धन्धों का परम्परागत स्वरूप

बढ़ई का काम

बढ़ई का काम गांव के प्रमुख धन्धों में से माना जाता था। बढ़ई का योगदान ग्रामीण अर्थव्यवस्था के चार क्षेत्रों में विशेष रूप से रहा है:

(अ) खेती के लिए—खेती में प्रयोग होने वाले अधिकांश उपकरणों का निर्माण गांव का बढ़ई ही करता था। ऐसे उपकरणों में 'हल', 'जुआ', सिंचाई हेतु चड़स के प्रयोग में आने वाले 'चाक', 'जुअड़', 'चक्क' आदि का उल्लेख किया जा सकता है। (ब) यातायात के लिए—यातायात के साधन के रूप में 'बैलगाड़ी' और 'घोड़ा तांगा' का निर्माण गांव का बढ़ई ही करता था। (स) अन्य धन्धों के लिए—बुनकरों के लिए 'अड्डा', रूई ओटने के लिए 'चरखी', धुनने के लिए 'धुनकी' एवं 'बेलन' आदि उपकरणों का निर्माण गांव का बढ़ई ही करता था। (द) घर गृहस्थी के लिए—यद्यपि ग्रामीण परिवारों में नगरों की तरह फर्नीचर रखने का प्रचलन तो नहीं था तथापि घर प्रयोग की अनेक दूसरी वस्तुओं के निर्माण में गांव के बढ़ई का योगदान अभूतपूर्व रहा है।

कुम्हार का काम

कुम्हार को प्रजापति कहा जाता है, क्योंकि समाज और परिवार की आवश्यकताओं की पूर्ति में उसका उल्लेखनीय योगदान रहा है। एक ओर दैनिक जीवन में काम आने वाले पात्रों का बनाना, जैसे—दूध पकाने की 'हांडी', दूध के बिलौने के लिए 'चाटी', आटा मलने के लिए 'कूंडा', पकाने के बाद साग-सब्जी रखने के लिए 'तौला' आदि। तो दूसरी ओर विवाह-शादी और अन्य उत्सवों पर सामूहिक भोज में काम आने वाले पात्रों, जैसे 'कुल्हड़', 'सकोरे', 'सराई', 'प्याली', 'सैनक' (घी, बूरा, चावल खाने का पात्र) का निर्माण करना, ग्रामीण कुम्हार का मुख्य धन्धा रहा है।

लुहार का काम

खेती के परम्परागत तरीकों में लुहार का भी अपना एक विशेष स्थान था। कृषि में काम आने वाले विविध छोटे-बड़े उपकरणों का जैसे—'खुरपा', 'दरांती', 'फावड़ा', 'गंडासा', चारा काटने वाले 'धूरे', हल के अन्दर का 'फाला' आदि वह पीढ़ी दर पीढ़ी बनाता चला आया है। इसके साथ ही रसोई में काम आने वाली अनेक चीजें, जैसे 'चिमटा', 'फूंकनी', 'सिन्डासी', 'कलछी', 'पल्टा' आदि को वही बनाता रहा है।

बुनकर

गांवों में कपड़ा बनाने के परम्परागत धन्धे में लगे लोग 'कोली' के नाम से जाने पहचाने जाते हैं। मनुष्य की परम आवश्यकताओं में कपड़े का स्थान दूसरा है। प्रत्येक व्यक्ति को तन ढकने के लिए कपड़ा तो चाहिए ही। इसके अतिरिक्त मौसमानुकूल भी कुछ कपड़ों की आवश्यकता पड़ती ही है। गांव की यह पूरी आवश्यकता गांव में कोली का धन्धा करने वाले लोग ही पूरा करते थे।

मोची का काम

19वीं शताब्दी के अन्त तक मोची के कार्य को सर्वोत्तम कार्यों के समान माना जाता था। पहले जब 'लाव-चड़स' द्वारा सिंचाई होती थी तो 'चड़स' का निर्माण गांव का मोची ही करता था। सिंचाई के इस साधन की आवश्यकता किसी विशेष किसान को नहीं, सभी को रहती थी। बाद में चलकर सिंचाई के दूसरे साधन विकसित होते गए। इस कार्य के अलावा मोची का योगदान कृषि में दूसरे प्रकार से भी था। कृषि यंत्र के रूप में 'जए' के सभी उपकरण, जैसे 'सोंटा', 'जोत', 'नस्मा', 'नाड़ी' आदि (बैलों को हांकने एवं नियंत्रित करने के उपकरण) का निर्माण भी गांव का मोची ही करता था।

ग्रामीण धन्धों का बदलता स्वरूप

ग्रामीण परम्परागत धन्धों में बढ़ई, लुहार, मोची आदि के धन्धे, जैसे कि हमने ऊपर लिखा, मुख्य रूप से खेती के साथ जुड़े हुए थे। स्वतंत्रता मिलने के पश्चात खेती करने के तौर-तरीके, उनमें काम आने वाले आदान एवं प्रयोग होने वाले उपकरणों एवं यंत्रों में आमूलचूल परिवर्तन आया है। खेती में यंत्रीकरण के प्रवेश ने इन धन्धों को बुरी तरह से प्रभावित किया है। उदाहरण के लिए ट्रैक्टर के प्रयोग ने 'हल' को काफी पीछे फेंक दिया है। इसी प्रकार से सिंचाई हेतु नलकूपों के आ जाने से 'लाव' व 'चड़स' का प्रयोग अब अतीत की वस्तु बन गई है। ऐसी ही स्थिति अन्य छोटे-मोटे उपकरणों के साथ, जिन्हें गांव का बढ़ई व लुहार बनाते थे, अब आधुनिक मशीनों के आ जाने से उनके प्रयोग में उल्लेखनीय कमी आई है।

सड़कों के विकास एवं गांवों को मंडी एवं पक्की सड़कों से जोड़ने की राष्ट्रीय नीति का सबसे बड़ा प्रभाव यह पड़ा है कि यातायात के साधनों में 'बस', 'मोटर', 'टैम्पो', 'ट्रक', 'ट्रैक्टर-ट्राली', यहां तक कि मोटर साईकल एवं स्कूटर का प्रयोग होने लगा है। इस स्थिति ने बैलगाड़ी एवं घोड़ा-तांगे की महत्ता को प्रायः समाप्त-सा ही कर दिया है। इस सबका अन्ततः प्रभाव यह पड़ा है कि बढ़ई एवं लुहार के धन्धों में इस भारी गिरावट के कारण इन लोगों के सम्मुख रोजी रोटी की समस्या पैदा हो गई है।

बढ़ई, लुहार, कोली, कुम्हार, छीपी आदि ये शिल्पी अनेक ऐसी चीजों का निर्माण करते थे जो घर-गृहस्थी के दैनिक जीवन में काम में आती थीं। खेती करने के तौर-तरीकों में परिवर्तन, यातायात के साधनों के विकसित होने, शिक्षा के प्रसार और शहरी सभ्यता के सम्पर्क में आने तथा राजकीय नीतियों, जैसे गांवों में गोबर गैस, बिजली आदि के आ जाने के कारण ग्रामीण परिवारों के रहन-सहन में भी उल्लेखनीय

परिवर्तन आया है। उदाहरण के लिए ग्रामीण महिलाओं द्वारा रुई की 'ओटाई' और 'कताई' धीरे-धीरे समाप्त ही हो चली है। दूध जमाकर, उसे बिलोने तथा घी निकालने का धन्धा अब 'डेयरी' के हाथ में चला गया है। भारतीय किसान के रसोईघर में अब बढ़ई, लुहार एवं कुम्हार द्वारा निर्मित बर्तनों का स्थान पीतल, अल्यूमिनियम, स्टील के बर्तनों ने ले लिया है।

गांवों में दैनिक प्रयोग में आने वाले कपड़ों की आपूर्ति पहले गांव के 'कोली' द्वारा पूरी कर ली जाती थी। अब रुई निर्मित कपड़ों के स्थान पर पोलिस्टर एवं टेरीकोट के आ जाने से तथा यातायात के साधन सुलभ हो जाने से कपड़ों की यह आवश्यकता एक अच्छी सीमा तक अब शहरी खरीद से पूरी की जाती है। इसके कारण जहां 'कोली' का धन्धा चौपट हुआ है वहां गांव के 'धोबी' की रोजी पर इसका कुप्रभाव पड़ा है। यही स्थिति 'छीपी' एवं 'धुने' के धन्धों के साथ हुई है। अब लोग न 'कोली' द्वारा निर्मित कपड़ा पसन्द करते हैं और न 'छीपी' द्वारा की गई छपाई ही।

अर्थव्यवस्था के इस परिवर्तन का कुल मिलाकर उल्लेखनीय प्रभाव यह पड़ा है कि इन धन्धों में परम्परागत रूप में लगे लोगों के लिए रोजी-रोटी का घाटा पड़ने लगा है। परिणामस्वरूप ये लोग अच्छी रोजी की तलाश में नगरों तथा कस्बों की ओर निरन्तर पलायन करने में लगे हुए हैं। यहां आकर इन्हें काम भी मिल जाता है और आमदनी भी अच्छी हो जाती है। गांव में रहते हुए इन्हें वर्ष में दो या तीन बार फसल के समय अनाज के रूप में मजदूरी मिल पाती थी, वह भी केवल पेट भरने लायक। नगरों में आकर यह मजदूरी उन्हें नकद रुपयों में मिलती है, जिसको वे अपनी इच्छानुसार व्यय कर सकते हैं। एक प्रकार से गांव के ये अनपढ़ कारीगर प्रबन्धशास्त्र के रोकड़ प्रवाह सिद्धान्त को समझने लगे, जिसका अर्थ होता है आज का मिलने वाला रुपया कल के मिलने वाले रुपये से अधिक मूल्यवान है। इन कारीगरों में से कुछ तो नगरों व कस्बों में जाकर बस गए हैं, शेष रात्रि को अपने गांव वापिस आ जाते हैं।

गांव का बढ़ई, शहरों में काम करने वाले बढ़इयों के पास थोड़े समय का प्रशिक्षण लेने के बाद औसतन साठ रुपये प्रतिदिन कमा लेता है, जिसकी कि वह गांव में कल्पना भी नहीं सकता था। नगरों एवं कस्बों में निरन्तर नए मकानों के निर्माण एवं उन्हें सुसज्जित किए जाने के लिए इतना काम निकल रहा है कि बढ़ई कारीगरों की निरन्तर कमी बनी रहती है। इसके साथ ही समाज के एक वर्ग पर धन की विपुलता के कारण एवं शिक्षा के बढ़ने के साथ-साथ लोगों में एक अच्छा जीवन जीने की लालसा बढ़ी है। अब ऐसे सभी परिवारों में कुर्सी, मेज, सोफा-सेट, ड्रेसिंग टेबिल, डाइनिंग सेट, डबल बैड, और इसी प्रकार के अन्य सामान की मांग बराबर बढ़ रही है। परिणामस्वरूप गांव का यह कल का बढ़ई, आज शहर और कस्बों में अकल्पित धन अर्जित कर रहा है।

अब गांव के कुम्हार को ही लीजिए, जबसे उसके परम्परागत मिट्टी के पात्रों की मांग में भारी गिरावट आई है, ऐसे कुम्हार ईंटों के भट्टों पर काम करते देखे जा सकते हैं। ईंटों को पाथना, भट्टे में ईंट भरना और पकने के बाद उन्हें भट्टे में से निकालना, इन तीन कामों के लिए मजदूरी की दरें सुनिश्चित हैं जो उन्हें नगदी के रूप में मिलती हैं। 'नौ नकद न तेरह उधार' की लौकोक्ति के व्यावहारिक महत्व को भारतीय बेपढ़ा जनमानस प्राचीन समय से ही समझता आया है जबकि जैसा कि हमने पहले कहा 'आज का मिलने वाला रुपया कल के मिलने वाले रुपये से अधिक मूल्यवान है' इस सिद्धान्त को प्रस्तुत करने में आधुनिक प्रबन्ध विज्ञान थोथा गौरव अनुभव करता है। यहां भी इन कुम्हारों को गांव में होने वाली आय की तुलना में इन भट्टों पर काम करने से होने वाली आय कई गुना है। यह बात दूसरी है कि नगरों व कस्बों में अन्य धन्धों में मिलने वाली मजदूरी की तुलना में उसकी यह मजदूरी कम बैठती हो, जिसके लिए कि उसे असन्तुष्ट होते देखा जा सकता है। जो कुम्हार अपने परम्परागत धन्धे में अभी भी लगे हुए हैं उन्होंने अपनी कलाकृति में भारी परिवर्तन किया है। अब वे केवल कुछ विशिष्ट श्रेणी के पात्रों का ही निर्माण करते हैं, जिनको बेचने से उन्हें नकदी आय हो सके।

गांव के 'लोहार' और 'कोली' की स्थिति कुछ हटकर है। जब से इनका धन्धा कमजोर पड़ा है, ऐसे लोगों के सम्मुख रोजी-रोटी की समस्या बन गई है। जो 'कोली' किसी समय में पूरे गांव की कपड़े की आवश्यकता पूरी करते थे, आज उनका काम केवल 'खेस' और 'दुतई' तक ही सीमित रह गया है। ऐसी स्थिति में ये लोग नगरों की ओर जाने के लिए बाध्य हुए हैं। गांवों में लुहार का परम्परागत काम काफी घटा है। जिस नये काम के लिए उसकी आवश्यकता है, उसके लिए उसके पास प्रशिक्षण नहीं है।

अनुसूचित जाति एवं जनजातियों के लिए सरकारी नीति में नए लोगों के जीवन, उनके विचारों एवं सोच-समझ में भारी परिवर्तन किया है। इस दृष्टि से इस वर्ग में आने वाले लोग जैसे मोची, मेहतर आदि अपने परम्परागत धन्धों में ह्रास आ जाने के बावजूद अधिक चिन्तित प्रतीत नहीं होते। ऐसे लोगों के लिए 20 सूत्री कार्यक्रम के अन्तर्गत 'स्पेशल कम्पोनेंट प्लान' तथा 'ट्राइबल सब प्लान' तैयार किया गया है ताकि सामाजिक, शैक्षिक और अन्य सामुदायिक सेवाओं तक उनकी पहुंच हो, वे

(शेष पृष्ठ 32 पर)

ग्रामीण औद्योगीकरण

सच्चिदानन्द सिंह
विनय कुमार सूद
अमन यादव

भारत गांवों का देश है। लगभग 76.69 प्रतिशत लोग गांवों में निवास करते हैं। इनके विकास एवं औद्योगीकरण के लिए निरन्तर प्रयास किए जा रहे हैं। साथ में गांवों में ही पर्याप्त सुविधाएं एवं रोजगार के अवसर उपलब्ध करके गांवों से शहरों की ओर पलायन को रोका जा सकता है। ग्रामीण औद्योगीकरण की ग्रामीण विकास में महत्वपूर्ण भूमिका है। आवश्यकता इस बात की है कि ऊर्जा एवं स्थानीय उपलब्ध पदार्थों का सर्वेक्षण किया जाए और उचित प्रबन्ध व्यवस्था की जाए ताकि सभी उपलब्ध स्रोतों का सही उपयोग किया जा सके। उचित उद्यमी भावना द्वारा उपर्युक्त समस्या का हल निकाला जा सकता है। ग्रामीण विद्युतीकरण, वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों का उपयुक्त प्रबन्ध एवं सुव्यवस्था, कच्चा माल एवं कृषि उत्पादन में वृद्धि व उस पर निर्भर उद्योगों में उपयुक्त तकनीकों द्वारा ग्रामीण विकास एवं ग्रामीण औद्योगीकरण सम्भव है।

महत्व

ग्रामीण आर्थिक विकास के लिए ग्रामीण औद्योगीकरण का अपना महत्व है। ग्रामीण विकास के बिना किसी भी राष्ट्र की समृद्धि, सम्पन्नता व आत्म निर्भरता अर्थहीन है। ग्रामीण समस्याओं के समाधान हेतु गांवों में ही रोजगार के अवसर जुटाकर, शहर की ओर पलायन करती हुई भीड़ को गांव में ही रोककर ग्रामीण जनशक्ति को उत्पादक एवं रचनात्मक कार्यों के लिए उपयोग करने की दिशा में ग्रामीण औद्योगीकरण एक महत्वपूर्ण आयाम प्रस्तुत करता है। ग्रामीण औद्योगीकरण के दो पहलू हैं। प्रथम—गांवों में बड़े औद्योगिक प्रतिष्ठानों की स्थापना करना। इस प्रक्रिया से बड़े शहरों में उद्योगों के केन्द्रीयकरण की प्रवृति को रोकने व संतुलित क्षेत्रीय विकास में सहायता मिलेगी। दूसरा पहलू है—देश के अधिक से अधिक गांवों में घर-घर कुटीर उद्योगों की स्थापना की जाए। दोनों पहलू ही अतिवादी हैं। व्यापक दृष्टि से ग्रामीण औद्योगीकरण का तात्पर्य गांवों में अधिक से अधिक विकास केन्द्रों व केन्द्रीय स्थानों पर आधुनिक एवं विकास श्रम लघु उद्योगों की स्थापना की जाए। इसके लिए कच्चा माल, दक्ष कर्मचारी व विपणन आदि की उचित व्यवस्था स्थानीय तौर पर की जाए।

पंचवर्षीय योजनाओं में लगातार प्रयास व प्रयत्न करने के बावजूद ग्रामीण औद्योगिक अंचल का विकास बहुत धीमा रहा है। ग्रामीण औद्योगीकरण बहुत विशाल तथा विविधतापूर्ण क्षेत्र है। इस क्षेत्र की विविधता की पृष्ठभूमि में न केवल सामाजिक-आर्थिक वरन् ऐतिहासिक व अनेक अन्य कारण हैं। ग्रामीण औद्योगीकरण के लिए सरकार के सामान्य नीति सिद्धान्तों को अपनाना ही जरूरी नहीं है वरन् इसमें परिस्थितियों के अनुरूप एक सशक्त कार्यक्रम तैयार कर, उसे मुस्तैदी से लागू करना जरूरी है।

सम्भावनाएं

ग्रामीण औद्योगीकरण को प्रोत्साहित करने के लिए कृषि पर आधारित उद्योगों की अत्यधिक सम्भावनाएं हैं। कृषि पर आधारित औद्योगीकरण के दो स्वरूप हो सकते हैं। प्रथम, कृषि की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उद्योग एवं दूसरा, कृषि उत्पादन के संसाधन के लिए उद्योग। उन्नत कृषि के लिए, खरपतवार निकालने, बीज एवं उर्वरक, बुआई, फसलों की कटाई, गहाई के लिए औजारों एवं यंत्रों की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त बीज संसाधन, मिट्टी परीक्षण एवं उर्वरक मिलाने वाले यंत्रों के प्रोत्साहन हेतु पर्याप्त अवसर है। कृषि संसाधन के विकास के अवसर ऊपर लिखित उद्यम से भी अधिक हैं। महाराष्ट्र के सहकारी चीनी एवं गुजरात के दुग्ध संसाधन उद्योग, कृषि संसाधन के अति सफल उदाहरण हैं। अन्य राज्यों में भी ऐसी ही प्रगति के लिए विशाल क्षेत्र उपलब्ध है। देश में संसाधन सुविधाओं के अभाव के कारण फल एवं सब्जी के कुल उत्पादन (45 मिलियन टन) का लगभग 30 प्रतिशत (13.5 मिलियन टन) नष्ट हो जाता है।

एक अनुमान के अनुसार देश में मांस एवं मछली का उत्पादन लगभग 4.70 मिलियन टन है। समुद्री मछली (1.3 मिलियन टन) को छोड़कर, शेष उत्पादन ग्रामीण क्षेत्रों में ही होता है। व्यापक कार्यक्रम चलाकर इनका उत्पादन दो गुना किया जा सकता है एवं उचित संसाधन द्वारा अधिक से अधिक विदेशी मुद्रा अर्जित की जा सकती है। इसके अतिरिक्त मुर्गी पालन, मधुमक्खी पालन, धान की भूसी से सीमेन्ट बनाना,

रेशम वस्त्र उद्योग, चीड़ के पत्तों से बक्से, मशीन से दोना-पत्तल, बीड़ी उद्योग आदि ऐसे अनेक उद्योग हैं जो ग्रामीण औद्योगीकरण की दिशा में महत्वपूर्ण हैं। कृषि पर आधारित उद्योगों की बुनियाद पर ही ग्रामीण औद्योगीकरण को विकसित किया जा सकता है।

भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में ऐसे अनेक कुटीर एवं लघु उद्योग हैं जो देश में प्राचीन काल से चली आ रही पारम्परिक प्रौद्योगिकी पर आधारित हैं। इन उद्योगों का उत्पादन, गुणवत्ता की दृष्टि से श्रेष्ठ होता है परन्तु लागत अधिक होती है और श्रमिक को इतनी कम आय प्राप्त होती है कि ग्रामीण कारीगरों की आर्थिक दशा दयनीय बनी रहती है। अतः आधुनिक प्रौद्योगिकी की सहायता से विकसित की गई ग्रामीण प्रौद्योगिकी के प्रयोग द्वारा ग्रामोद्योगों की सरलता बनाए रखते हुए उनको अधिक कुशल एवं उत्पादक बनाया जाना चाहिए।

हथकरघा वस्त्र उद्योग एक ऐसा उद्योग है जिसमें ग्रामीण भारत की जनसंख्या का एक बड़ा भाग लगभग 60 लाख व्यक्ति प्रत्यक्ष रूप से हथकरघा वस्त्र के उत्पादन एवं सम्बन्धित व्यवसाय जैसे हथकरघे का निर्माण, कपड़े की रंगाई, छपाई आदि में संलग्न हैं। परन्तु जनसाधारण की दृष्टि में हथकरघा वस्त्र उद्योग पुरानी, फैशन विहीन प्रौद्योगिकी पर आधारित होने के कारण आकर्षण विहीन हो गया है। अतः आधुनिक प्रौद्योगिकी का समुचित प्रयोग करके उद्योग की कार्यकुशलता एवं अधिकाधिक रोजगार के अवसर में वृद्धि की जा सकती है।

साबुन एक ऐसा उद्योग है जिसमें प्रौद्योगिकी को सुधारने की बहुत आवश्यकता है। यह एक ऐसा उद्यम है जिसमें छोटे-छोटे शक्तिचालित यंत्रों के प्रयोग से शिक्षित ग्रामीण बेरोजगारों को उत्पादक एवं लाभदायक रोजगार में लगाया जा सकता है।

ग्रामीण औद्योगीकरण का भविष्य

उद्यम सम्बन्धी क्षमता, प्रबन्धकीय एवं तकनीकी दक्षता का अभाव और आधार संरचना में अन्तराल, ग्रामीण औद्योगीकरण का मार्ग अवरुद्ध किए हुए हैं। छठी एवं सातवीं पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान केन्द्र एवं राज्य सरकारों ने ग्रामों व लघु उद्योगों के विकास के लिए 1780.5 एवं 2752.74 करोड़ रुपये का प्रावधान रखा था।

ग्रामीण औद्योगीकरण का भविष्य उज्ज्वल है जिससे न केवल स्थानीय उद्यमियों को, बल्कि बाहर के शिक्षित युवकों को और व्यावसायिक योग्यता प्राप्त व्यक्तियों को गांव में जाने व लघु उद्योग के क्षेत्र में अपना भविष्य आजमाने के लिए प्रोत्साहन मिलेगा। गांव से शहरों में पलायन तथा उत्पादन का आधार विस्तृत होने से आर्थिक सत्ता कुछ हाथों में सीमित होने पर नियंत्रण सम्भव है। ग्रामीण क्षेत्र में वैकल्पिक ऊर्जा (पशु, जैव एवं बायोमास) प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है जिसके समुचित उपयोग से न केवल पारम्परिक ऊर्जा बल्कि विदेशी मुद्रा की अधिकाधिक बचत भी सम्भव है। साथ ही साथ प्रदूषण आदि अनेक प्रकार की समस्याओं से भी छुटकारा मिल सकता है।

सुझाव

1. देश की औद्योगिक नीति में मुख्य रूप से बड़े उद्योगों पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से बल दिया जाता रहा है। लघु उद्योगों का विकास प्राथमिकता के आधार पर आवश्यक है।
2. कुटीर एवं लघु उद्योगों का ग्रामीण क्षेत्रों में विकास एवं सम्वर्धन होना चाहिए।
3. कुटीर एवं लघु उद्योग क्षेत्रों के लिए विशेष संरक्षण व आरक्षण का प्रावधान होना चाहिए।
4. लघु, ग्रामीण एवं कुटीर उद्योगों के लिए वित्तीय सहायता उपलब्ध कराने की दृष्टि से भारतीय औद्योगिक विकास बैंक से केवल इसी क्षेत्र की ऋण सम्बंधी आवश्यकताओं को निबटाने के लिए एक अलग इकाई की स्थापना वांछनीय है।
5. ग्रामीण औद्योगीकरण में खादी-सम्वर्धन का महत्वपूर्ण स्थान है। सूती रेशों के साथ पोलिस्टर के रेशों की कताई-बुनाई करके खादी ग्रामोद्योग के क्षेत्र में नया मोड़ लाया जा सकता है। खादी के साथ-साथ जनसाधारण की वस्त्र सम्बन्धी आवश्यकता हथकरघा क्षेत्र के विकास द्वारा पूरी की जा सकती है।
6. सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों के अनुरूप विकास व तकनीकी को लागू करने की तरफ पर्याप्त ध्यान दिया जाना चाहिए।
7. हस्तशिल्प उद्योगों को बढ़ावा देने के लिए साधनों का सर्वेक्षण एवं उत्पादों का विपणन आवश्यक है।
8. ग्रामीण जनशक्ति में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका स्वीकारने की आवश्यकता है। कृषि प्रसार कार्यक्रम ऐसा होना चाहिए जो महिलाओं का ज्ञान और दक्षता बढ़ाने में सहायक हो।
9. ग्रामीण क्षेत्र में भूमिहीन श्रमिकों को उत्पादन इकाइयों का स्वामित्व प्रदान करने के लिए सहायता की व्यवस्था की जाए।

10. कृषि पर आधारित उद्योग सहकारी आधार पर लगाया जाना चाहिए। जिसमें विकास प्रक्रिया में आम लोगों की भागीदारी सम्भव हो सके।

11. नवीन उद्योगों को कर से मुक्त करें एवं अनुदान देकर उन्हें संरक्षण दिया जाना चाहिए। जिससे वे आत्मनिर्भर बन सकें।

12. नये एवं लघु उद्योग क्षेत्र के लिए आरक्षित उद्योग ग्रामीण क्षेत्र में ही लगाया जाना चाहिए। इसके लिए उचित कानून बनाने की आवश्यकता है।

13. मुख्य उद्योगों की सहायक इकाइयों को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

14. प्राविधिक इकाइयों द्वारा उत्पादन एवं प्रशिक्षण कार्यक्रम समय-समय पर गांवों में चलाया जाना चाहिए।

15. ग्रामीण युवाओं के लिए उचित तकनीकी प्रशिक्षण की सुविधा गांव में उपलब्ध होनी चाहिए।

16. अधिकतर योजनाएं बनने के बाद कार्यान्वित नहीं हो पाती हैं जिससे उनका लाभ जनसाधारण तक नहीं पहुंच पाता। इसलिए योजनाओं को ईमानदारी से कार्यान्वित पर अधिक बल देना अनिवार्य है।

17. गांवों में राजनीतिक चेतना के प्रचार एवं प्रसार के लिए सामुदायिक विकास योजनाओं को कार्यान्वित करने का दायित्व पंचायत समितियों को सौंपा जाए जो विकास अधिकारी के माध्यम से इस दायित्व का निर्वाह कर सके।

उपसंहार

सन् 1961 में भारत की 82.03 प्रतिशत जनता गांवों में रहती थी। 1981 में यह घटकर 76.69 प्रतिशत रह गई। भारत की उपजाऊ धरती व इसकी विशाल मानव व पशु शक्ति का सदुपयोग एवं गांवों में अधिक से अधिक रोजगार के अवसर की संभावना केवल ग्रामीण औद्योगीकरण से ही सम्भव है। गांवों को ही अच्छे बाजार बनाने एवं ग्रामीण युवकों को उद्यमी बनाने के लिए उपयुक्त प्रशिक्षण देकर व उपलब्ध साधनों का समुचित प्रयोग के लिए उचित प्रयास की आवश्यकता है।

ग्रामीण औद्योगीकरण में तेजी लाने के लिए, तकनीकी संस्थाओं में ग्रामीण विद्यार्थियों के लिए आरक्षण की व्यवस्था, गांव शिल्पों का सुधार, सेवा-केन्द्र की सुविधा, परामर्श सेवा, सामुदायिक विकास केन्द्र आदि को सुव्यवस्थित करने से ही ग्रामीण औद्योगीकरण की सफलता सम्भव है। निबन्ध में दिए गए सुझावों को व्यावहारिकधरातल पर लाने से विश्वास है कि ग्रामीण औद्योगीकरण तेजी से होगा। ग्रामीण औद्योगीकरण द्वारा ही राष्ट्र में अपराध वृद्धि की दर में भी कमी लाई जा सकती है।

एग्रीकल्चरल इंजीनियर, कृषि विज्ञान केन्द्र, रामपुरा, रेवाड़ी-123401 (हरियाणा)

(पृष्ठ 29 का शेष)

अपनी आमदनी बढ़ा सकें तथा अपने जीवन स्तर में सुधार ला सकें।

यह थी ग्रामीण धन्धों के परिवर्तित स्वरूप की एक संक्षिप्त झलक जिसे पश्चिमी उत्तर प्रदेश के गांवों में स्पष्ट देखा जा सकता है। इन परम्परागत धन्धों के बदलते स्वरूप के कारण प्रमुख रूप से दो बड़ी समस्याएं देखने को मिल रही हैं। पहली समस्या युवा पीढ़ी की बेरोजगारी की है। जब ये धन्धे पीढ़ी दर पीढ़ी चलते थे तो परिवार के युवाओं को रोजगार की तलाश में अन्यत्र जाने की आवश्यकता नहीं थी। वे परिवार में रहते हुए ही अपने पुश्तैनी धन्धे में दक्षता प्राप्त कर लेते थे। वैसे भी इन धन्धों में भारी गिरावट के कारण युवा पीढ़ी के लिए अब इनमें किसी प्रकार का कोई आकर्षण नहीं रह गया है। वृद्ध एवं प्रौढ़ लोग जैसे-तैसे पुश्तैनी काम से चिपटे हुए हैं, क्योंकि उनके पास काम का कोई अन्य विकल्प भी नहीं है। परिणामस्वरूप इन युवाओं को रोजी-रोटी के लिए नगरों की ओर आना पड़ता है। इससे ही जुड़ी दूसरी समस्या नगरों की अपनी है। ग्रामीण युवाओं के नगरों की ओर आन्तरिक प्रवास के कारण नगरों की सामाजिक एवं आर्थिक दोनों प्रकार की ही समस्याएं बढ़ी हैं। इन सभी समस्याओं से जूझने का केवल एक ही मार्ग है कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था को संवारा जाए, जिसके लिए आधुनिक-घरेलू तकनीकी, प्रशिक्षण, आदानों की आपूर्ति, वित्त की सरल सुविधाओं एवं निर्मित वस्तुओं के बाजार की व्यवस्था के साथ ग्रामीण उद्योग-धन्धों को पुनर्जीवित किया जाए।

81, महेश्वरी गंज, हापुड़
उत्तर प्रदेश

ग्रामीण औद्योगीकरण : समस्याएं, समाधान और सम्भावनाएं

हरि विश्नोई

गरीबी और बेरोजगारी, देश में आज दो बड़ी विकट समस्याएं हैं। जिन्होंने लोगों का जीना दूभर कर रखा है। इन्हें जड़ मूल से खत्म कर देना तो बड़ा मुश्किल है। लेकिन हां यदि प्रयास किया जाएं तो किसी हद तक इन्हें कम करने में सफलता अवश्य मिल सकती है। हमारे देश को गांवों का देश कहा जाता है। भारत की आत्मा गांवों में बसती है। इसलिए देश को खुशहाल करने के लिए सबसे जरूरी बात है कि पहले हमारे गांव खुशहाल हों। लेकिन इस रास्ते पर अवरोध हैं, दिक्कतें हैं, जो अन्ततः गांववासियों की तरक्की में रोड़ा अटकाते हैं। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि ग्रामीण औद्योगीकरण से हमारे गांवों की हालत तेजी से सुधर सकती है। लेकिन सबसे पहले हमें अपने सोचने और काम करने का ढंग बदलना होगा ताकि समय और श्रम की बरबादी को रोका जा सके। साथ ही औद्योगीकरण का संतुलित विकास हो सके।

प्रायः ग्रामोद्योग का मतलब उन उद्योगों से होता है जो देहाती इलाकों अथवा 10 हजार तक की जनसंख्या वाले क्षेत्रों में स्थापित होते हैं। उनमें बिजली अथवा अन्य किसी शक्ति से उस माल का उत्पादन किया जाता है जो खादी एवं ग्रामोद्योग बोर्ड की सूची में आता हो। साथ ही भूमि-भवन और मशीनों में प्रति कारीगर या कार्यकर्ता पन्द्रह हजार रु. से अधिक निवेश न हो। ग्रामीण औद्योगीकरण की गति तेज करने के लिए राज्य खादी एवं ग्रामोद्योग बोर्ड तथा अखिल भारतीय खादी एवं ग्रामोद्योग आयोग द्वारा विभिन्न सुविधाएं उन उद्यमियों को प्रदान की जाती हैं जो ग्रामीण इलाकों में कोई उद्योग लगाना चाहते हैं या पहले से चला रहे हैं। पुश्तैनी कारीगर, औद्योगिक प्रशिक्षण प्राप्त ट्राइसेम योजना से लाभार्थी महिलाएं अथवा सहकारी समितियों को पंजीकृत किया जाता है। ग्रामीण औद्योगीकरण की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने में सहकारी समितियां सफल सिद्ध हो सकती हैं। देश में इसके कई उदाहरण मौजूद हैं। यह सच है कि ग्रामीण औद्योगीकरण तो हुआ है लेकिन उसे नई दिशा एवं गति दी जानी भी बहुत जरूरी है ताकि ग्रामोत्थान हो सके। ग्रामीण क्षेत्रों के लिए उपयुक्त टैक्नोलाजी को विकसित एवं उसका प्रसार करने की दिशा में राष्ट्रीय अनुसंधान विकास निगम (एन. आर. डी. सी.), वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद (सी. एस. आई. आर.) तथा ग्रामीण प्रौद्योगिकी विकास परिषद (कापार्ट) का योगदान सराहनीय रहा है। इसके अलावा ग्रामीण-टैक्नोलाजी विकास केन्द्र (सैन्डार्ट) तथा टैक्नोलाजी एण्ड एक्शन फार रूरल एडवांसमेन्ट (तारा) आदि अनेक संगठन ऐसे हैं जो निजी क्षेत्र में रहते हुए ग्रामीण उद्योगों के समुद्र में प्रकाश स्तम्भ कहे जा सकते हैं।

पहल शक्ति का अभाव

ग्रामीण औद्योगीकरण के लिए जहां एक ओर उद्यमियों की समस्याओं पर ध्यान देना होगा वहीं संगठन, प्रशिक्षण और विपणन की व्यवस्था को भी चुस्त बनाया जाना जरूरी है। अब ग्रामोद्योग की परिभाषा अपेक्षाकृत विस्तृत हो गई है। इसके अन्तर्गत गुड़, खाण्डसारी, कत्था, चूना, लाख, तेल, कुंभकारी, अल्यूमिनियम के बर्तन, बांस-बेंत, दाल-प्रशोधन, ताड़-गुड़, लौह कला, रबर-वस्तुएं, मिथेन गैस तथा पाली वस्त्रों को भी शामिल किया गया है। अतः ग्रामीण औद्योगीकरण की कुल सम्भावनाएं अत्यन्त व्यापक हो गई हैं। देश भर में जिला स्तर पर ग्रामोद्योग अधिकारी कार्यरत हैं जो तकनीकी सहायता, आर्थिक सहायता एवं व्यवस्थापकीय सुविधाएं उपलब्ध कराने के लिए तैनात किए गए हैं। लेकिन प्राथमिक स्तर पर कार्य करने वाले ग्रामीण कार्यकर्ताओं को सक्रिय और प्रशिक्षित किया जाना बेहद जरूरी है ताकि स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति वहीं बैठकर, स्थानीय लोगों के बीच विचार-विमर्श के द्वारा हो सके।

जीर्णोद्धार करना भी जरूरी है

ग्रामीण निर्धनता को दूर करने के लिए कृषि, पशुपालन, दुग्ध एवं मत्स्य आदि से जुड़े उद्योगों का पुनरुद्धार किया जाना भी आवश्यक है। इसके लिए खास कर ट्राइसेम के लाभार्थी युवाओं पर जिम्मेदारी आती है, क्योंकि ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए छोटे उद्योगों को ग्रामोन्मुखी बनाया

जाना होगा। अभी तक जो स्थिती रही है उससे यही संकेत मिलते हैं कि उद्योगों की स्थापना प्रायः शहरों में अधिक हुई है क्योंकि यह आम धारणा हो गई है कि गांव में आवश्यक सुविधाएं नहीं मिलती हैं जबकि यह बात सौ फीसदी सच नहीं कही जा सकती। बहुत से गांव अब देश में ऐसे हैं जहां सड़क, संचार, स्वास्थ्य, शिक्षा, बैंक और बिजली आदि की समस्त सुविधाएं उपलब्ध हैं। उन इलाकों में छोटी प्रक्रिया-इकाइयां लगाई जा सकती हैं। खाद्य संसाधन विभाग द्वारा इस ओर ध्यान दिया जा रहा है।

अपने देश में ऐसी अनेक युक्तियां विकसित की गई हैं जो ग्रामोपयोगी हैं, सस्ती हैं तथा उनका इस्तेमाल आसान है। अतः ग्रामीण औद्योगीकरण में उन्हें शामिल किया जाना चाहिए। जल-उपचारक बर्तन, घड़े और कैण्डल, अग्निरोधी छतें और छप्पर, कच्ची दीवारों पर जल सह्य गारे—मिट्टी का प्लास्टर, पत्तों से दोने और पत्तल बनाने की मशीन, रस्सी और सुतली बनाने की मशीन, भुट्टा एवं मूंगफली छीलक, धान की भूसी से सीमेन्ट, गन्ने की खोई से कागज तथा गेहूं के भूसे से विभाजक बोर्डशीट बनाने आदि की अनेक तकनीक हैं जो सभी ग्रामीण इलाकों में नहीं पहुंची हैं जबकि एक अभियान चलाकर इन्हें तेजी से पहुंचाया जाना चाहिए। साथ ही ग्रामीणों को इन्हें अंगीकार करना चाहिए। पिछले दिनों देश के छः महानगरों में ग्राम श्री मेले आयोजित किए गए जिसके अंतर्गत 'कापार्ट' द्वारा ग्रामोद्योगी वस्तुओं के उत्पादकों, विक्रेताओं तथा ग्राहकों को एक मंच पर एकत्रित करने के सराहनीय प्रयास हुए। इस प्रकार की प्रदर्शनियां गांव-गांव और शहर-शहर लगाई जानी चाहिए ताकि ग्रामोद्योगों को भरपूर बाजार मिले।

ग्रामीण औद्योगीकरण के अन्य पहलुओं पर दृष्टिपात करने के साथ-साथ कुछ अन्य बातों पर ध्यान देना भी बहुत जरूरी है। जिनमें से कुछ प्रमुख इस प्रकार हैं—ग्रामीण कारीगरों के कौशल में सुधार, उनकी उत्पादन क्षमता में वृद्धि, नवविकसित एवं किफायती प्रौद्योगिकी का लाभ, कच्चा माल, अच्छे और उन्नत औजार, डिजाइन एवं पैकिंग टैक्नोलॉजी, बाजार उपलब्ध कराना, आर्थिक सहायता, आवश्यक परामर्श।

ग्रामीण औद्योगीकरण के क्षेत्र में अपार संभावनाएं हैं। जरूरत उसमें पांव जमाने की है, आत्मनिर्भरता के लिए सुप्त शक्ति को जगाने की है। गांवों में तेजी के साथ फैलते उद्योगों से लाखों को रोजगार मिला है। फलस्वरूप उनकी आय में वृद्धि हुई है। ग्रामीण क्षेत्रों में आज जो बदलाव दिखाई देता है उसमें विभिन्न प्रकार के उद्योग-धंधों को चलाने वालों को भी श्रेय जाता है। स्पष्ट है कि बुनियादी जरूरतों को पूरा करने के बाद उनकी नई सोच विकसित होगी जो रोटी, कपड़ा और मकान की उलझनों में व्यस्त थे। यदि कम पूंजी, कम स्थान और गांव के संसाधनों के आधार पर रोजगार जुटाने का यह सिलसिला तेजी से चलता रहा तो करोड़ों उन गरीब लोगों को भी राष्ट्र की मुख्य धारा से जोड़ा जा सकता है जो अब तक बिल्कुल अलग-थलग थे और अशिक्षा, अज्ञान और अभावों के अंधेरे में भटकने के लिए मजबूर थे।

ग्रामीण औद्योगीकरण से पर्यावरण बिगड़ने की संभावनाएं अत्यल्प हो जाती हैं। यदि देखा जाए तो मशीन और मनुष्य का रिश्ता बहुत पुराना है। ज्यों-ज्यों सभ्यता का विकास हुआ त्यों-त्यों विज्ञान और तकनीक ने यंत्रों के प्रचलन को बढ़ाया, सुधारा और आज उसे वहां तक पहुंचा दिया जिस पर आश्चर्य होता है। परिणामस्वरूप तेजी से औद्योगीकरण तो हुआ लेकिन इस विकास के लिए हमने अपने पर्यावरण को भी दांव पर लगा दिया है। आज मिट्टी, पानी और हवा की बरबादी हमें सोचने पर मजबूर करती है कि ग्रामोद्योगों के बारे में गांधीजी ने जो कल्पना की थी वही हमारे देश के लिए सर्वाधिक अनुकूल थी और आज भी है।

ग्रामीण भारत को कभी खानों में विभाजित करके नहीं देखा और समझा जा सकता। साथ ही साथ यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि जब तक ग्रामीण औद्योगीकरण को प्रोत्साहित किए जाने के प्रयास सफल नहीं होते तब तक ग्रामीणों का जीवन स्तर सुधारने की बात भी अधूरी ही रहेगी क्योंकि कृषि उत्पादन में हुई वृद्धि का लाभ किसानों को तब और अधिक प्राप्त हो सकेगा जब वे छोटे पैमाने पर चलने वाले उद्योग धंधे गांवों में भी होंगे। स्थानीय इकाइयों की स्थापना से जहां एक ओर कच्चे माल की आपूर्ति शीघ्र सुलभ हो सकेगी वहीं दूसरी ओर ग्रामीण बेरोजगारी जैसी समस्याओं में भी कमी हो सकेगी।

उपयुक्त वातावरण

ग्रामीण औद्योगीकरण का एक सुखद पहलू यह भी है कि श्रम एवं पूंजी के सम्बन्ध परस्पर मधुर रहने के कारण इसमें श्रमिक असंतोष की बिजलियां नहीं कड़कती, तालाबंदी और चक्का-जाम के बादल नहीं गरजते बल्कि इससे तो उस क्षेत्र का सही मायनों में विकास होता है जो अंततः वहां के रहने वालों की सम्पन्नता और कौशल में अभिवृद्धि करता है। उनकी गरीबी और अभावों को दूर करता है।

हम जब ग्रामीण औद्योगीकरण की बात करते हैं तो हमारे सामने केवल रोजी रोटी की समस्या का निदान ही नहीं होता बल्कि हमारे आदर्शों की पृष्ठभूमि में अच्छे रहन-सहन और आचार-विचार की छवि उजागर होती है। क्योंकि ग्राम उद्योग

हमें परस्पर सहयोग प्रेम और सद्भाव के लिए रास्ता दिखाते हैं। उन्नत, सुखी और आदर्श जीवन ग्रामोद्योगों के बीच रहकर सम्भव हो सकता है। तभी हमारे वेदों में स्पष्ट कहा गया है कि ''विश्वं पुष्टं ग्रमे अस्मिद, अनातुरम्'' यानि की हमारे गांव पुष्ट हों, आरोग्य हों। सामूहिक मंगल कामना करने वाली हमारी संस्कृति का सिद्धान्त रहा है कि शुद्ध आहार-विहार से ही चित्त शुद्ध होता है। इसे सार्थक समर्थन देते हैं हमारे ग्रामोद्योग जिनका हमारे दैनिक जीवन में बहुत महत्व है।

स्थानीय संसाधनों का उपयोग सम्भव

यह सत्य है कि विकास में गति एवं आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए चुने गए मार्ग में बाधाएं और अवरोध आते हैं। लेकिन स्वावलंबी बनने के लिए यदि लक्ष्य स्पष्ट हो तो सफलता प्राप्त करना मुश्किल नहीं है। यही बात ग्रामीण क्षेत्रों का समग्र विकास करने तथा गरीबी उन्मूलन के मामले में भी कही जा सकती है। यदि हमारे गांववासियों के पास कई तरह के कौशल होंगे तो उन्हें स्वाभिमान से जीने के लिए कठिनाई नहीं होगी और ग्रामीण औद्योगीकरण के क्षेत्र में इस प्रकार की अनन्त सम्भावनाएं हैं।

ग्रामीण औद्योगीकरण की अपनी कुछ अलग ही विशेषताएं हैं जिनके कारण हमारे देश की सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों के अनुसार ग्रामोद्योग पर विशेष ध्यान दिया जाना आवश्यक और न्यायसंगत है। हमारे देश में बेकारी की समस्या बहुत विकराल है। इसके समाधान हेतु ग्रामीण औद्योगीकरण के रास्ते पर चल कर बहुत से उपाय खोजे जा सकते हैं क्योंकि इसमें अधिक रोजगार की संभावनाएं हैं। खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में व्याप्त बेरोजगारी को कम करने के लिए कम पूंजी विनियोग तथा स्थानीय संसाधनों का अधिकतम उपयोग करने के लिए ग्रामोद्योगों से बेहतर साधन दूसरा नहीं हो सकता क्योंकि इसमें अकुशल या अर्द्ध कुशल लोगों अथवा परम्परागत शिल्पियों के लिए अवसर मिलते हैं।

अब ग्रामोद्योग की वस्तुओं की लोकप्रियता शहरी जीवन में भी बड़ी तेजी के साथ बढ़ रही है। सूती, रेशमी और ऊनी खादी के अतिरिक्त चमड़े की वस्तुएं, परिधान, पॉटरी, शहद, साबुन, माचिस, अगरबत्तियां, खाद्य-सामग्री और हाथ कागज से बने फाइल-कवर तथा ग्रीटिंग कार्ड आदि की अपनी अलग पहचान बन चुकी हैं। शुद्ध, सुन्दर और अनेक मनपसन्द ग्रामोद्योगी वस्तुएं उचित मूल्य पर सर्वत्र उपलब्ध हैं। अधिकांश मामलों में तो निर्माता ही विक्रेता होता है। अतः उपभोक्ताओं को ग्रामीण उद्योगों में बनी वस्तुएं अपेक्षाकृत सस्ती पड़ती हैं। इनके उत्पादन में गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाले लोगों, ग्रामीण उद्यमियों, समाज सेवी संस्थाओं तथा सहकारी समितियों का योगदान रहता है। देश के विभिन्न राज्यों में ग्रामोद्योग बोर्ड कार्यरत हैं जिन्होंने ग्रामीण औद्योगीकरण की स्थापना एवं प्रोत्साहन के लिए विभिन्न कार्यक्रम चला रखे हैं तथा उनका अपना मार्केटिंग नेटवर्क भी है।

गांधीजी का कथन सत्य है कि ''ग्रामोत्कर्ष के लिए यह ध्यान में रखना होगा कि गरीबों के लिए रोटी ही अध्यात्म है। ग्रामीण आर्थिकता शोषण से युक्त रहती है। दरअसल शोषण ही हिंसा का आधार बनता है। लेकिन जो अर्थशास्त्र नैतिक मूल्यों की उपेक्षा करता है वह झूठा है क्योंकि विकास का मूल स्रोत है—नैतिकता।''

अमीर और गरीब के बीच की गहरी खाई को पाटने के लिए जो प्रयास हुए उनमें गांधीजी की विचारधारा को दृष्टिगत रखते हुए काफी कुछ किया गया। लेकिन फिर भी भीड़ का सैलाब बढ़ता गया। बेरोजगारी बढ़ी, परम्परागत कला और शिल्प की अवनति हुई। ग्रामीण कारीगरों को अकुशल श्रमिक के रूप में जीवकोपार्जन करने पर मजबूर होना पड़ा। बढ़ती हुई आबादी और महंगाई ने समस्याओं को बढ़ाया। अतः जरूरी हो गया है कि युगोस्लाविया तथा डेनमार्क आदि की भांति कृषि-पशुपालन को मुख्य उद्योगों की श्रेणी में लाया जाए। साथ ही बर्तन, खिलौने, मूर्तियों, नक्काशीदार काष्ठकला, रस्सी और पत्तल के दौने बनाना, रेशम-कीट या मधुमक्खी-पालन, रंगाई, छपाई, बुनाई, कताई, कढ़ाई, जड़ी-बूटी संग्रह, अचार-मुरब्बे, पापड़ आदि अनेक उद्योग ऐसे हैं जो गांवों में लगाए जा सकते हैं।

एक बुनियादी बात यह है कि ग्रामीण औद्योगीकरण के द्वारा धन का विकेन्द्रीकरण करना सम्भव है। इसके अतिरिक्त ग्रामोद्योग में हल्की मशीन एवं औजारों का इस्तेमाल होता है जिसके कारण मानवीय श्रम की उपेक्षा का खतरा भी नहीं रहता। रोजगार की तलाश में गांव के लोग महानगरों में भाग रहे हैं। लेकिन यदि ग्रामीण औद्योगीकरण का स्वप्न पूरी तरह से साकार हो जाए तो शहरों की ओर दौड़ की यह होड़ भी रुक सकती है। गांववासियों को यदि गांव में रहकर ही अपना रोजगार मिल जाए तो इससे बढ़िया कौन-सी बात हो सकती है। इस क्रम में उल्लेखनीय है कि यह देखना होगा कि ग्रामीण उद्यमियों की बुनियादी समस्याएं कौन-सी हैं और उन्हें किस तरह हल किया जा सकता है। इस पर ध्यान देना भी जरूरी है कि ग्रामीण उद्यमियों की अपनी आकांक्षाएं क्या हैं?

उ. प्र. खादी ग्रामोद्योग बोर्ड द्वारा ग्रामोद्योगों में काम आने वाले उपकरणों के सुधरे हुए डिजाइनों को पुरस्कृत किए जाने

की व्यवस्था की गई है। इसी प्रकार राष्ट्रीय अनुसंधान विकास निगम द्वारा भी ग्रामोपयोगी आविष्कारों के लिए पुरस्कार दिए जाते हैं। बैरिंग तथा नट बोल्ट वाली आटा पीसने की चक्की, सुधरा हुआ चाक जैसी अनेक चीजें हैं जिन्हें हमारे गांवों में रहने वाले बढ़ई, लोहार, कुम्हार और कारीगर आसानी से बना सकते हैं और अधिक उत्पादन के लिए उनका प्रयोग कर सकते हैं। लेकिन इस प्रकार की तमाम जरूरी जानकारी पिछड़े हुए ग्रामीण इलाकों तक पहुंचाने की जरूरत है। इस कार्य में विद्यार्थियों के समूह, अध्यापक और स्वयंसेवी संगठन महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। ग्रामीणों और उद्योगों के बीच गतिशील सम्बन्ध स्थापित करने के उद्देश्य में सफल हो सकते हैं। प्रयास ऐसे हैं कि कटाई उपरान्त की बरबादी को रोका जा सके।

राष्ट्रवासियों के लिए सुलभ प्रौद्योगिकी सूचना पद्धति स्थापित करने के लिए प्रौद्योगिकी-सूचना, भविष्यवाणी तथा मूल्यांकन परिषद (टी. आई. एफ. ए. सी.) ने पहल की है। यह परिषद देश-विदेश की प्रौद्योगिकियों की जानकारी इच्छुक व्यक्तियों को उपलब्ध कराएगी जिसमें ज्ञान आधारित कार्यपालक सार होगा। वाणिज्य योग्य अनुसंधान तथा विकास की योजनाएं तथा प्रयोगकर्ताओं की मदद के लिए विशेषज्ञों की सूची बनाने का काम इस परिषद द्वारा किया जाएगा। परिषद में व्यावसायिक प्रौद्योगिकीविद् योजनाकार तथा प्रशासनिक अधिकारी होंगे। विभिन्न केन्द्रीय विभागों, सरकारी एजेंसियों, प्रयोगशालाओं, उद्योगों, औद्योगिक संस्थाओं तथा शिक्षण संस्थाओं को प्रौद्योगिकी तथा व्यवसाय के विभिन्न पहलुओं पर एक मंच प्रदान करेगी तथा उनसे निकट का सम्बन्ध रखेगी। अतः बेहतर होगा कि कृषि, निर्माण और सेवा क्षेत्रों के साथ-साथ परिषद द्वारा ग्रामीण औद्योगीकरण के सम्बन्ध में भी ठोस कार्य किए जाएं तथा योजनाएं प्रस्तुत की जाएं।

ग्रामीण औद्योगीकरण के लिए प्रथम पंचवर्षीय योजना में 42.11 करोड़ रु. तथा दूसरी योजना काल में चालू पूंजी के अतिरिक्त 175.66 करोड़ रु. खर्च किये गये थे। साथ ही ग्रामीण कारीगरों को प्रशिक्षित करके उन्हें प्राविधिक सहायता प्रदान करने की व्यवस्था भी की गई थी। इसके फलस्वरूप पांच लाख दस्तकारों को उसका लाभ मिला था। ग्रामोद्योगों के सघन विकास के लिए छठे दशक में एक योजना शुरू की गई थी तब से आज तक ग्रामीण क्षेत्रों में सतत् औद्योगिक विकास का क्रम जारी है। कृषि आधारित उद्योगों को बढ़ावा देने तथा कृषि उत्पादों को बेहतर इस्तेमाल कराने के लिए कृषि मंत्रालय बनाया गया। लेकिन ग्रामीण औद्योगीकरण के विकास को गति देते समय इस बात को ध्यान में रखा जाना जरूरी है कि क्षेत्र-विशेष की जरूरतें नजरअन्दाज न होने पाएं। अब तक हमारी विकास नीति सन्तुलित विकास के सिद्धान्त पर आधारित रही है जिसमें कृषि और ग्रामीण विकास को प्रमुख अंग माना जाता है। लेकिन हम इस हरित क्रान्ति को हमेशा के लिए खेती में लहर नहीं मान सकते। अतः ग्रामीण औद्योगीकरण को हमें विकास का अभिन्न अंग मान कर चलना होगा।

उद्योग	उत्पादन (करोड़ रुपये में)		रोजगार (लाख व्यक्ति)		निर्यात (करोड़ रुपये में)	
	1984-85	1989-90	1984-85	1989-90	1984-85	1989-90
1. परम्परागत उद्योग						
खादी	170	300	14.60	20.00	4	
ग्रामीण उद्योग	759	1,700	22.40	30.00		
हस्तकरघा	2,880	3,680	74.70	98.10	349	485
हस्तशिल्प	3,500	5,400	27.40	35.80	1,700	2,597
रेशम	317	510	20.00	24.30	129	190
अन्य	100	170	5.90	9.20	26	32
कुल	7,726	11,760	165.00	217.40	2,208	3,304
2. आधुनिक उद्योग						
विद्युत चालित करघा	6,423	7,020	32.20	35.30		
आधुनिक लघु इकाई	50,520	80,220	90.00	119.00	2,350	4,140
अन्य	1,061	1,100	27.90	28.30		
कुल	58,004	88,340	150.10	182.60	2,350	4,140
कुल (1 + 2)	65,830	1,00,100	315.00	400.00	4,558	7,444

एच-88, शास्त्री नगर,
मेरठ-250005 (उ. प्र.)

ग्रामीण औद्योगीकरण — प्रगति और सम्भावनाएं

अखिलेश

भारत एक कृषि प्रधान देश है। इसीलिए यहां की अर्थव्यवस्था ग्राम प्रधान अर्थव्यवस्था है। देश के विकास और औद्योगीकरण के लिए जरूरी है कि पहले गांवों का विकास हो। सही मायनों में गांवों का विकास और औद्योगीकरण ही देश की प्रगति का पैमाना है। इसलिए ग्रामीण औद्योगीकरण को ग्रामीण विकास का महत्वपूर्ण भाग माना गया है।

आजादी के बाद गांवों के विकास के लिए कई कार्यक्रम और योजनाएं तैयार की गईं। इनमें सामुदायिक विकास योजना, खादी ग्रामोद्योग की समन्वित विकास योजना, ग्रामीण औद्योगिक परियोजना, पिछड़े क्षेत्रों के विकास की योजनाएं, समन्वित ग्रामीण विकास योजना (आई. आर. डी. पी.), ग्रामीण युवा प्रशिक्षण और स्वरोजगार कार्यक्रम (ट्राइसेम), सीमांत कृषक एवं लघु कृषक विकास अभिकरण (एम. एफ. डी. ए.) जैसी योजनाएं और कार्यक्रम प्रमुख थे। इसके अलावा नीतिगत उपायों में वस्तु आरक्षण नीति, अखिल भारतीय बोर्डों की स्थापना, औद्योगिक बस्तियों की स्थापना, औद्योगिक सहकारिता का विकास, पिछड़े इलाकों में दी जाने वाली छूट और रियायतें प्रमुख हैं।

छठी पंचवर्षीय योजना में यह अनुमान लगाया गया कि ग्रामीण और लघु उद्योगों की उत्पादन क्षमता का उपयोग मात्र 45 से 60 प्रतिशत ही रहा। इस अनुमान से यह स्पष्ट होता है कि विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में सरकार द्वारा ग्रामीण औद्योगीकरण के लिए अपनाए गए विभिन्न कार्यक्रमों तथा नीतियों का अपेक्षित परिणाम प्राप्त नहीं हो सका। वास्तव में सरकार ने ग्रामीण औद्योगीकरण के लिए जो योजनाएं और कार्यक्रम तैयार किए, वे ग्रामीण उत्पादन क्षमता व आय को बढ़ाकर उनके रहन-सहन के स्तर को सुधारने में ज्यादा सफलता प्राप्त नहीं कर सकीं।

आजादी के बाद देश के सामने यह एक महत्वपूर्ण सवाल रहा है कि गांव का औद्योगीकरण कैसे किया जाए। गांवों में ऐसे कौन-से उद्योग धन्धे लगाए जाएं, जिनसे गांवों की शहरों पर निर्भरता खत्म हो सके और ग्रामीण रोजगार की तलाश में शहरों की ओर न भागें। संचार, परिवहन, ऊर्जा, चिकित्सा, शिक्षा जैसी बुनियादी सुविधाएं उन्हें गांवों में ही उपलब्ध हो जाएं।

हमारी ग्रामीण अर्थव्यवस्था मूलतः कृषि पर निर्भर है। इसलिए देश की अर्थव्यवस्था को मजबूत करने के लिए गांवों को आर्थिक रूप से सुदृढ़ बनाना जरूरी है। इसके लिए जरूरी है कि गांवों का औद्योगीकरण किया जाए।

गांवों का औद्योगीकरण करने के लिए सबसे पहले हमें परंपरागत उद्योगों को बढ़ावा देना होगा। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान गांधीजी इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि लघु और कुटीर उद्योगों से ही ग्रामीण अर्थव्यवस्था में सुधार लाया जा सकता है। इसलिए उन्होंने खादी और ग्रामोद्योग प्रचार को अपने रचनात्मक कार्यक्रम का हिस्सा बनाया था। इससे गांवों की आत्मनिर्भरता भी बढ़ती है।

जब गांवों में लघु और कुटीर उद्योग काफी बड़े पैमाने पर शुरू हो जाएंगे तो ग्रामीणों का शहरों की ओर पलायन भी रुक जाएगा। देश में कृषि से जुड़े कच्चे माल पर आधारित उद्योग केवल 45 फीसदी हैं। खाद्य पदार्थों के संसाधन से कई छोटे-छोटे उद्योग लगाए जा सकते हैं। डेरी उद्योग, पशु पालन, मुर्गी पालन, फल-सब्जी उत्पादन, रेशम के कीट पालना, शहद उत्पादन, माचिस उद्योग, आतिशबाजी बनाना, अगरबत्ती उद्योग, चर्म उद्योग, गुड़-खांडसारी-उद्योग, दस्तकारी, बैंत का सामान और बर्तन उद्योग जैसे कई परम्परागत उद्योग हैं, जिन्हें बिना किसी कठिनाई के बड़े पैमाने पर चलाया जा सकता है। आज आधुनिकीकरण के नाम पर ये उद्योग समाप्त होते जा रहे हैं। इसलिए आज इन उद्योगों को पुनर्जीवित करने की जरूरत है। लघु उद्योगों को बढ़ावा मिलने के साथ-साथ कुशल ग्रामीण कारीगरों के हस्तकौशल का भरपूर फायदा उठाने के भी प्रयास किए जाने चाहिए। हर लघु और कुटीर उद्योग का उद्देश्य उत्पादन बढ़ाना और रोजगार की संभावनाएं पैदा करना होना चाहिए। इसके लिए कौन-सा उद्योग किस जगह ज्यादा सफल हो सकता है, इसका भी खास तौर पर ध्यान रखा जाना चाहिए।

गांवों में लघु और कुटीर उद्योग लगाने में ग्राम पंचायतें भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती हैं। कच्चे माल की उपलब्धता और स्थानीय आवश्यकता को ध्यान में रखकर पंचायतें यह तय कर सकती हैं कि कौन-सा उद्योग किस जगह के लिए ज्यादा उपयुक्त और फायदेमंद रहेगा। इसके बाद आती है पूंजी की आवश्यकता। उद्योगों के लिए कर्ज मुहैया

कराने में पंचायतें महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। अक्सर यह देखा जाता है कि ग्रामीण उद्योगों को दिए जाने वाले कर्ज के वितरण में काफी धांधली होती है। इसलिए पंचायतों के जरिए अगर यह कर्ज वितरण हो, तो इन धांधलियों को काफी हद तक रोका जा सकता है।

ग्रामीण औद्योगीकरण में उद्यमी के सामने सबसे बड़ी समस्या है कच्चे माल की। ज्यादातर ग्रामीण उद्यमियों को समय पर आवश्यकतानुरूप कच्चा माल नहीं मिल पाता। इस वजह से ज्यादातर उद्योग धंधे ठप्प हो जाते हैं। कच्चे माल की सप्लाई को आसान बनाने के लिए पहले एजेंसियों को कच्चे माल की मात्रा निश्चित कर दी जाती थी और राज्य लघु उद्योग विकास निगमों के जरिए उसका वितरण किया जाता था। लेकिन कच्चे माल की कमी और बिचौलियों की वजह से यह तरीका ज्यादा कारगर साबित नहीं हो सका। इससे ग्रामीण उद्यमियों को जो कच्चा माल मिलता भी था, वह घटिया किस्म का होता था। फिर कच्चे माल के दामों में जो उतार-चढ़ाव आता है, उससे भी ग्रामीण उद्यमियों पर बुरा असर पड़ता है।

इसके बाद आती है विपणन सुविधा (मार्केटिंग) के अभाव की बात। ग्रामीण उद्यमियों के सामने जो दूसरी प्रमुख समस्या है वह मार्केटिंग की है। माल तैयार हो जाने के बाद उसे बजार तक पहुंचाना ग्रामीण उद्यमियों के लिए काफी कठिन होता है। बाजार तक सामान पहुंचाने के बाद उसके दाम में वृद्धि हो जाती है और इससे उत्पादों की मांग में कमी आती है। ग्रामीण उपभोक्ताओं की न्यूनतम क्रय क्षमता से भी बाजार सीमित होता जाता है। विपणन की ये समस्याएं मानकीकरण के अभाव, विपणन सूचनाओं की कमी, बड़े उद्योगों के साथ प्रतिस्पर्धा, पूंजी की कमी जैसे अहम कारणों से पैदा होती है। ज्यादातर लघु और कुटीर उद्यमी विपणन के लिए बिचौलियों पर निर्भर करते हैं। इस वजह से उन्हें अपने माल का पूरा-पूरा लाभ नहीं मिल पाता है। इस वक्त लघु उद्यमियों, दस्तकारों और शिल्पकारों को राष्ट्रीय लघु उद्योग विकास निगम, लघु उद्योग सेवा संस्थान, खादी ग्रामोद्योग आयोग, रेशम बोर्ड, जूट बोर्ड के निगमों, अखिल भारतीय हथकरघा विपणन सहकारी समितियों जैसी बड़ी संस्थाओं द्वारा विपणन सूचना व सहायता बहुत ही कम दी जाती है। इस तरह ग्रामीण औद्योगीकरण विपणन की समस्या से ग्रस्त है।

ग्रामीण औद्योगीकरण में तकनीकी शिक्षा का भी बड़ा महत्व है। हमारे देश में गांवों में शैक्षिक संगठनों की कमी है। साथ ही गांवों में आज भी तकनीकी शिक्षा बहुत कम पहुंच पाई है। 1978 में अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद ने सामुदायिक पालिटेक्नीकों की स्थापना की सिफारिश की थी। ग्रामीण क्षेत्रों के लिए एक ऐसा केन्द्र होना चाहिए जिसमें रोजगार बढ़ाने और गरीबी दूर करने जैसी अहम समस्याओं पर विचार किया जा सके। इसके अलावा सबसे बड़ी कमी कारीगरों के प्रशिक्षण में हैं। कारीगरों की क्षमता बढ़ाने के लिए तकनीकी प्रशिक्षण बहुत जरूरी है। लघु और कुटीर उद्योगों के लिए तकनीकी और प्रबंध संबंधी सलाह की सुविधा भी होनी चाहिए।

ग्रामीण औद्योगीकरण की दिशा में मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने सामुदायिक पालिटेक्नीक की जो योजना शुरू की है, उसे देश के 109 संस्थानों के जरिए अमल में लाने की कोशिश की जा रही है। इस योजना में ग्रामीण युवाओं और महिलाओं के लिए तकनीकी प्रशिक्षण, गैर कृषि क्षेत्रों के लिए गांवों में टैक्नोलाजी हस्तांतरण, टैक्नोलाजी के लिए सहायक सेवाओं का संगठन जैसे विषय शामिल हैं।

द्वारा—वैद्य मुनिदेव उपाध्याय
डी-1/2, कलैक्ट्री के पीछे बनी पार्क,
जयपुर-302016

"कुरुक्षेत्र" मंगाने का पता
व्यापार व्यवस्थापक
प्रकाशन विभाग
पटियाला हाउस
नई दिल्ली-110001

वार्षिक : 20.00 रु.
द्विवार्षिक : 36.00 रु.
त्रिवार्षिक : 48.00 रु.
चेक/बैंक ड्राफ्ट अथवा मनिआर्डर व्यापार व्यवस्थापक प्रकाशन विभाग के नाम देय होना चाहिए।

भारतीय आर्थिक विकास में लघु एवं ग्रामीण उद्योगों का योगदान

डा. साहब दीन मौर्य

भारत के आर्थिक विकास में लघु एवं ग्रामीण उद्योगों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् लघु एवं ग्रामीण उद्योगों में न्यूनतम पूंजी के विनियोग से अधिकतम रोजगार की उपलब्धि हुई है। अनेक वस्तुओं के गुणात्मक उत्पादन में लघु एवं घरेलू उद्योगों को विशिष्टीकरण भी प्राप्त है। भारत जैसे विकासशील देशों में लघु एवं ग्रामीण उद्योगों के विकास से उद्योगों तथा सम्पत्तियों के विकेन्द्रीकरण को बल मिला है जो देश के बहुमुखी विकास के लिए एक शुभ संकेत है। हमारे देश के कुल औद्योगिक उत्पादन का एक तिहाई से अधिक भाग लघु औद्योगिक क्षेत्र से प्राप्त होता है। इन लघु औद्योगिक इकाइयों के विकास से आर्थिक शक्ति का केन्द्रीकरण नहीं हो पाता और वह कुछ सीमित हाथों में न रह कर अपेक्षाकृत विस्तृत एवं अधिक हाथों में फैल जाती है जिससे देश के सर्वांगीण विकास को बल मिलता है। लघु एवं ग्रामीण उद्योग अपेक्षाकृत थोड़ी एवं लघु पूंजी के विनियोग से संचालित होने के कारण दूर-दराज के ग्रामीण क्षेत्रों में भी संचालित किए जा सकते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों का औद्योगीकरण तथा आर्थिक विकास होने से रोजगार एवं साधनों के अभाव में नगरों की ओर पलायित होने वाली जनसंख्या के प्रवास पर भी रोक लगाई जा सकती है। इस प्रकार लघु उद्योगों के विकेन्द्रीकरण से देश के सभी क्षेत्रों तथा सभी वर्गों के लोगों के आर्थिक स्तर के उन्नयन में उल्लेखनीय सहायता मिलती है। इन विशेषताओं के साथ ही लघु उद्योगों में विनियोजित पूंजी की तुलना में अधिक रोजगार के अवसर उपलब्ध होते हैं।

उत्पादित वस्तुएं

भारत में 5000 से अधिक वस्तुओं का उत्पादन लघु क्षेत्र में किया जाता है और सामूहिक उपयोग की अधिकांश वस्तुएं इसी क्षेत्र के अन्तर्गत उत्पन्न की जाती हैं। चमड़ा एवं चमड़े की वस्तुएं, साइकिल तथा साइकिल उपकरण, स्टेशनरी, साबुन, प्लास्टिक एवं रबड़ की वस्तुएं, दंत मंजन, लोहे तथा लकड़ी के फर्नीचर, टार्च, जूते की पालिश, पेंट तथा वार्निश, लुंगी, गमछे आदि सामूहिक उपयोग की वस्तुएं हैं जो घरेलू उद्योगों में उत्पादित होती हैं। बिजली के बल्ब, ट्यूब लाइट तथा अन्य सामान, रेडियो, टेलीविजन, कैल्कुलेटर आदि इलेक्ट्रानिक वस्तुएं, खेल के सामान, विज्ञान प्रयोगशालाओं एवं सर्वेक्षण से सम्बन्धित उपकरण आदि विविध वस्तुओं के उत्पादन लघु क्षेत्र द्वारा सफलतापूर्वक संचालित हो रहे हैं।

जहां एक ओर मोटे कपड़े के उत्पादन में लघु इकाइयों के रूप में संचालित हथकरघा उद्योग को विशिष्टीकरण प्राप्त है वहीं दूसरी ओर रेशमी एवं ऊनी वस्त्रों का उत्पादन भी घरेलू उद्योग की एक विशिष्टता है। अब नवीन तकनीक का प्रयोग लघु उद्योगों में तेजी से हो रहा है और सिंथेटिक वस्त्रों का उत्पादन भी हथकरघा एवं लघु उद्योग क्षेत्र में सफलतापूर्वक किया जा रहा है।

लघु उद्योगों का विकास

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत सरकार ने विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास के लिए अनेक उपाय किए और इसके विकास को गति प्रदान की। पिछले 10-15 वर्षों में लघु उद्योगों का तीव्रतर विकास हुआ है। इसका स्पष्टीकरण इसी तथ्य से हो जाता है कि 1973-74 में 4.16 लाख औद्योगिक इकाइयां लघु क्षेत्र के अन्तर्गत कार्य कर रही थीं जिनकी संख्या बढ़कर 1985-86 में 13.53 लाख हो गई। इस प्रकार 12 वर्षों में लघु औद्योगिक इकाइयों की संख्या 9.37 लाख बढ़ गई। इसी अवधि में इनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं के मूल्य में (वर्तमान कीमत दर पर) लगभग आठ गुना की वृद्धि अंकित की गई है।

सातवीं पंचवर्षीय योजना में लघु उद्योग

सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985-90) के आरम्भ (1984-85) में लघु उद्योगों द्वारा उत्पादित वस्तुओं का मूल्य 50,520 करोड़ रुपये था। इसे योजना के अन्त तक बढ़ाकर 88,220 करोड़ रुपये करने का लक्ष्य रखा गया है। इसी प्रकार लघु क्षेत्र में कार्यावसरों की मात्रा 90 लाख व्यक्ति से बढ़ाकर 119 लाख व्यक्ति की जाएगी। 1984-85 में लघु क्षेत्र द्वारा उत्पादित वस्तुओं के निर्यात से 2,350 करोड़ रुपये प्राप्त हुए थे इसे

1990 तक 4,140 करोड़ रुपये तक बढ़ाने का लक्ष्य रखा गया है। इस प्रकार सातवीं पंचवर्षीय योजनावधि में लघु क्षेत्र के उत्पादन में 9.7 प्रतिशत, रोजगार में 5.8 प्रतिशत और निर्यात में 12 प्रतिशत वार्षिक चक्रवृद्धि विकास का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। सातवीं पंचवर्षीय योजना में निर्धारित लक्ष्यों को तालिका में प्रदर्शित किया गया है।

तालिका

सातवीं पंचवर्षीय योजना में लघु क्षेत्र के लिए निर्धारित लक्ष्य

वर्ष	उत्पादन (करोड़ रुपये)	रोजगार (लाख व्यक्ति)	निर्यात (करोड़ रुपये)
1984-85 (वास्तविक)	50,520	90	2,350
1985-86	55,225	95	2,630
1986-87	61,130	100	2,950
1987-88	66,630	106	3,300
1989-90 (अंतिम वर्ष)	88,220	119	4,140

समस्याएं एवं भविष्य

देश में जनसंख्या की अधिकता, बढ़ती बेरोजगारी तथा पूंजी विनियोग की कमी को देखते हुए लघु उद्योगों की भूमिका विशेष महत्वपूर्ण हो जाती है। भारत सरकार द्वारा लघु उद्योगों के विकास के लिए किए गए अनेक प्रयासों के बावजूद लघु एवं कुटीर उद्योग विविध समस्याओं से ग्रस्त हैं जिनके निराकरण के अभाव में इनका पर्याप्त विकास सम्भव नहीं हो पाएगा। लघु एवं कुटीर उद्योगों से संबंधित कुछ प्रमुख समस्याएं इस प्रकार हैं:

बहुत-सी लघु इकाइयों को समय पर और लगातार कच्चा माल नहीं उपलब्ध हो पाता। इसी प्रकार आकार में छोटे एवं पूंजी की कमी के कारण आधुनिक तकनीक पर निर्मित उपकरण भी प्राप्त नहीं हो पाते। पुराने यंत्रों के प्रयोग तथा आधुनिक विकसित तकनीकों के प्रयोग के अभाव के कारण उत्पादन लागत अपेक्षाकृत अधिक आती है। कुछ अपवादों को छोड़कर अधिकांश लघु इकाइयों में वस्तुओं की गुणवत्ता को यथोचित मात्रा में न बढ़ा पाना भी एक समस्या है जिसके कारण बड़े कारखानों द्वारा तैयार वस्तुओं के सामने इनसे उत्पादित वस्तुएं नहीं टिक पातीं। छोटी-छोटी औद्योगिक इकाइयां प्रायः वित्तीय समस्या से ग्रस्त रहती हैं। कच्चे माल और आवश्यक उपकरणों के क्रय तथा पुराने उपकरणों के पुनर्स्थापना के लिए धन की व्यवस्था के अभाव में असंख्य इकाइयां बीमार स्थिति में देखी जा सकती हैं और अनेक तो बन्द ही हो जाती हैं।

लघु इकाइयों की एक बड़ी समस्या है बड़े पैमाने के उद्योग-धंधों द्वारा उत्पादित अपेक्षाकृत सस्ती एवं अच्छी वस्तुओं से प्रतियोगिता की। लघु एवं घरेलू उद्योगों में उत्पादित वस्तुओं के संगठित बाजार का भी प्रायः अभाव देखने को मिलता है। जो वस्तुएं लघु इकाइयों में सरलता से निर्मित हो सकती हैं उनमें से बहुत-सी बड़ी औद्योगिक इकाइयों में भी निर्मित होती हैं। सरकारी प्रतिबंध के बावजूद ऐसी अनेक घटनाएं होती रहती हैं। एक महत्वपूर्ण समस्या यह भी है कि लघु उद्योगों को सरकार द्वारा प्रदत्त सुविधाओं का अधिकांश लाभ अपेक्षाकृत बड़ी इकाइयों को ही प्राप्त हो पाता है और बहुसंख्यक लघु एवं सीमान्त इकाइयां अविकासित ही रह जाती हैं।

उपरोक्त समस्याओं के निराकरण हेतु केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों ने अनेक प्रशासकीय एवं वित्तीय उपाय किए हैं। भारत सरकार ने औद्योगिक कानून 1951 के अन्तर्गत आरक्षण हेतु एक सलाहकार समिति का गठन किया था। सन् 1967 में आरक्षण को लागू किया गया जिससे कुल 47 वस्तुओं को आरक्षित किया गया। फरवरी 1987 तक आरक्षित वस्तुओं की संख्या बढ़ाकर 850 कर दी गई। ये आरक्षित वस्तुएं केवल उन्हीं औद्योगिक इकाइयों में निर्मित होती हैं जो लघु क्षेत्र के अन्तर्गत आती हैं। उल्लेखनीय है कि इन आरक्षित वस्तुओं में से कुछ को बड़ी औद्योगिक इकाइयों में उत्पादन हेतु कुछ विशेष शर्तों के साथ दी भी जा सकती हैं। एक मुख्य शर्त यह है कि बड़ी इकाइयां ऐसे अपने समस्त उत्पादनों का 75 प्रतिशत निर्यात हेतु प्रदान करेंगी।

वस्तुओं के आरक्षण के साथ ही अनेक वस्तुओं के विक्रय को प्रोत्साहित करने के लिए सरकार आर्थिक सहायता भी प्रदान करती है। उदाहरणार्थ हथकरघा उद्योग द्वारा निर्मित ऊनी, सूती, रेशमी वस्त्रों पर निर्धारित छूट के बराबर सरकार अनुदान देती है जिससे उक्त उद्योग अन्य क्षेत्र के उद्योगों से प्रतियोगिता में पीछे न रह जाए। लघु उद्योगों के विकास के लिए प्रदर्शनियों के आयोजन हेतु भी आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है।

लघु उद्योगों के लिए वस्तुओं के आरक्षण से इस उद्योग में प्रगति को एक नई गति मिली है। सन् 1981 में आरक्षित वस्तुओं का उत्पादन करने वाली इकाइयों की संख्या 144 हजार थी जिसमें आरक्षण लागू करने के पश्चात् 133 प्रतिशत

(शेष पृष्ठ 47 पर)

सामाजिक संरचना एवं औद्योगीकरण

प्रो. के. एल. सेकड़ा

समाज सामाजिक सम्बन्धों का जाल है जिसका कोई मूर्त स्वरूप नहीं होता। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि समाजों में दोनों ही प्रकार के सम्बन्ध सामाजिक संगठन या व्यवस्थात्मक अथवा अव्यवस्थावादी, कुसमायोजन या संघर्ष रूपी सम्बन्ध पाए जाते हैं। इस प्रकार समाज एक अमूर्त अवधारणा है जो कि सामाजिक संरचनाओं की आधारशिला रखते हैं। सामाजिक संरचना के अंग हैं। सामाजिक संरचनाओं का विकास स्थायी इकाइयों से होता है जिनमें परस्पर एक निश्चित प्रकार के सम्बन्ध विद्यमान होते हैं। सामाजिक संरचना को समझने से पूर्व संरचना की जानकारी होना जरूरी है। संरचना–किसी भी वस्तु आकृति या ढांचा एक निश्चित क्रम में होता है जो क्रम सदैव स्थायी रहता है। वस्तु का निर्माण अनेक निर्माणक इकाइयों द्वारा होता है। इन इकाइयों का अपना-अपना निर्धारित स्थान एवं क्रम होता है। जिसे स्थायी संस्तरण कहते हैं। उस क्रम के आधार पर उनके कार्य होते हैं जो इस इकाई के महत्व को दर्शाता है जैसे-शरीर की संरचना की निर्णायक इकाइयां हाथ, पैर, पेट, आंख, नाक, कान आदि हैं जिनका स्थान निश्चित एवं निर्धारित है। फलत: उनके कार्य भी निर्धारित होते हैं लेकिन इतना होते हुए भी शरीर के प्रत्येक अंग एक दूसरे पर पूर्णत: आश्रित एवं निर्भर है तभी शरीर सम्मिलित रूप से कार्य कर पाता है। इस संरचना द्वारा स्थापित एकता सावयवी एकता कहलाती है।

सामाजिक संरचना का दूसरा अर्थ मार्क्सवादी साहित्य में देखा जा सकता है जो सावयवी सिद्धान्त से भिन्न है जिसे उत्पादन के सन्दर्भ में समझा जा सकता है। मार्क्स ने समाज की संरचना को आर्थिक संरचना माना है।

औद्योगीकरण

उत्पादन की नवीन व्यवस्था का नाम औद्योगीकरण है जिसमें मशीनों द्वारा मानव की आवश्यकता सम्बन्धी वस्तुओं का वृहत पैमाने पर उत्पादन किया जाता है। इस प्रक्रिया में ऊर्जा का स्थान यान्त्रिक ऊर्जा द्वारा ले लिया जाता है।

संयुक्त राष्ट्र संघ की व्याख्या के अनुसार औद्योगीकरण से तात्पर्य बड़े-बड़े उद्योगों के विकास तथा छोटे और कुटीर उद्योग धन्धों के स्थान पर वृहत स्तर पर मशीनों द्वारा उत्पादन व्यवस्था से है। औद्योगीकरण आर्थिक विकास की व्यापक प्रक्रिया का एक अंग मात्र है जिसका उद्देश्य उत्पादन के साधनों की क्षमता में वृद्धि करके जनजीवन के स्तर को ऊंचा उठाना है।

भारतीय सामाजिक संरचना पर औद्योगीकरण का प्रभाव कोई भी नवीन समावेशन सामाजिक संरचना को प्रभावित करता है। हम जानते है कि औद्योगीकरण में जैविक शक्ति मानव शक्ति का स्थान यांत्रिक (मशीनी) शक्ति द्वारा लिए जाने के कारण भारतीय श्रम एवं श्रमिकों पर इसका बहुत गंभीर प्रभाव पड़ा है। जो कार्य श्रम शक्ति द्वारा एक सप्ताह या एक माह में किया जाता था वही कार्य मशीनों द्वारा चन्द घण्टों में समाप्त हो जाने के कारण बेकारी एवं बेरोजगारी को बढ़ावा मिला। फलत: अर्थशास्त्र के मांग एवं आपूर्ति के नियमानुसार श्रमिकों की मांग कम हो जाने के कारण उनकी आवश्यकता घटने से श्रम शक्ति का आर्थिक पतन होने लगता है। श्रमिक अपनी जैविक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कम पैसे में अपने श्रम को बेचने के लिए मजबूर हो जाते हैं और इस प्रकार शोषण को बल मिलता है। अनेक समाज शास्त्रियों ने सामाजिक परिवर्तन के अध्ययन का प्रयास किया और सम्मिलित रूप से भारतीय सामाजिक संरचना में औद्योगीकरण के निम्न परिवर्तनों का जिक्र किया है।

जाति संरचना का वर्ग-संरचना में परिवर्तन

भारतीय समाज की संरचना का प्रमुख आधार जाति व्यवस्था है जबकि पाश्चात्य समाज की संरचना वर्गों द्वारा निर्मित है। औद्योगीकरण के कारण जाति व्यवस्था पर आधारित संस्तरण प्रभावित हुआ क्योंकि औद्योगीकरण के कारण व्यवसाय जन्म द्वारा निर्धारित न होकर योग्यता पर आधारित हो गए। फलत: भारतीय सामाजिक संरचना में जाति का स्थान व्यावसायिक दृष्टि से वर्गों ने ले लिया। औद्योगीकरण से पूर्व प्रत्येक जाति के सदस्य अपने-अपने परम्परागत व्यवसायों में व्यस्त रहते थे किन्तु भारत में औद्योगीकरण की

तीव्र प्रक्रिया ने जातियों के आधार पर व्यवसाय को समाप्त कर दिया और सामाजिक गतिशीलता को बढ़ावा दिया है क्योंकि औद्योगीकरण के बाद व्यक्ति के व्यवसाय का निर्धारण उसकी योग्यता के आधार पर होता है। अर्थात् विभिन्न जाति के लोग अपनी क्षमताओं के आधार पर किसी भी प्रकार के व्यवसाय को अपना सकते हैं। परिणामस्वरूप व्यवसायिक वर्ग स्थापित हुए जिनका आधार योग्यता व क्षमता है जिन्हें व्यक्ति अपनी योग्यताओं और क्षमताओं के कारण अर्जित करता है। जो प्रदत्त नहीं होते जिनका आधार आर्थिक होता है। वर्ग का उल्लेख कार्ल मार्क्स ने विस्तृत रूप से किया है। व्यवसाय को करने वाले लोग एक ही वर्ग के सदस्य कहलाते हैं। वर्ग संरचना में जातिगत नियंत्रण व जातिवाद भेदभाव में शिथिलता आई है।

नवीन व्यावसायिक वर्ग का उदय

औद्योगीकरण के कारण नवीन वर्ग व्यवस्था अस्तित्व में आए उद्योग की स्थापना करने वाला वर्ग जिसके पास अधिक मात्रा में पूंजी है, पूंजीपति कहलाए, जो लगातार औद्योगिक उत्पादन के माध्यम से अपनी पूंजी का विस्तार करते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे लोगों का समूह था जिसके पास बहुत अधिक पैसा भी नहीं था तथा वे श्रमिक की श्रेणी में भी नहीं आते थे। कृषि क्षेत्र में लगे लोगों में पर्याप्त मात्रा में कमी होने से परम्परागत मध्यम वर्ग का सामाजिक स्तरीकरण के सम्बन्ध में हुए अध्ययनों के आधार पर यह माना जाता है कि औद्योगिक विकास के साथ-साथ मध्यम वर्ग भी उदय होता जाता है जिनका आर्थिक जीवन स्तर न तो इतना ऊंचा होता है कि जिसकी तुलना धनी या पूंजीपति वर्ग से की जा सके और न ही इतना निम्न जितना कि भारतीय श्रमिकों का। तीसरे प्रकार का वर्ग जो अपने श्रम को बेचकर जीविका अर्जित करता है श्रमिक कहलाता है। प्रत्येक उद्योग प्रधान देश में श्रमिक वर्ग की रचना होना स्वाभाविक है। अतः औद्योगीकरण की प्रक्रिया ने श्रमिक वर्ग को जन्म दिया। जब श्रमिक उद्योगों में काम करते है तो उनकी सामाजिक-आर्थिक व तकनीकी समस्याएं भी एक जैसी होती हैं जो राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप धारण कर लेती हैं। समान समस्याओं से ग्रस्ति होने के कारण श्रमिकों में नवीन वर्ग चेतना जागृत होती है जिसका उल्लेख कार्ल मार्क्स ने भी किया है।

औद्योगीकरण ने अनामिकता को जन्म दिया

औद्योगीकरण के कारण व्यक्ति का जीवन मशीन बनकर रह गया है। अत्यन्त व्यस्तता के कारण वह अपने पारिवारिक दायित्वों को ही जैसे-तैसे निर्वाह करता है परिणामस्वरूप नगरों व महानगरों में व्यक्ति यह तक नहीं जानता कि उसके पड़ोस में कौन रह रहा है।

संयुक्त परिवार प्रथा में परिवर्तन

कृषि अर्थव्यवस्था ने संयुक्त परिवार को न केवल स्थापित ही किया है अपितु दृढ़ता प्रदान की जिसे औद्योगीकरण ने गहरा आघात पहुंचाया है। खेती के कार्य में परिवार में जितने अधिक व्यक्ति हों उतना काम होता है। लेकिन औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप कृषि अर्थव्यवस्था पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में परिवर्तित होने के कारण नवीन व्यवसाय एवं नवीन व्यावसायी वर्गों का उदय हुआ। फलस्वरूप व्यक्ति की योग्यता से उसे जो व्यवसाय मिलता है वह जरूरी नहीं उसके मूल निवास को ही मिले अतः उसे नवीन व्यवसायों में प्रवेश हेतु या स्थानान्तरण के कारण अपने पैतृक परिवार से दूर जाना पड़ता है जिसके परिणामस्वरूप संयुक्त परिवार प्रथा एकल या नाभिकीय परिवारों में परिवर्तित हो रही है।

परिवार का आकार सीमित

औद्योगीकरण व शिक्षा के प्रभाव से व्यक्ति सीमित परिवार के फायदों से वाकिफ हो गया है और लोगों ने परिवार नियोजन को अपनाया है। आज एक या दो बच्चों की इच्छा का कारण सीमित आय व औद्योगीकरण ही है।

सामाजिक रूढ़ियों व प्रथाओं के प्रति उदासीनता

आधुनिक औद्योगिक समाजों में अब प्राचीन परम्पराएं, रीति-रिवाज व रूढ़ियां धीरे-धीरे समाप्त होती जा रही हैं जिसका एक मूल कारण श्रमिक व व्यवसायी वर्ग अपने ग्रामीण संस्कृति-धार्मिक पर्यावरण को छोड़कर आधुनिक औद्योगिक नगरों की सम्बन्धित बस्तियों में बसने लगे हैं। अतः धीरे-धीरे परम्पराओं को वह विस्मृत करता जा रहा है। ज्ञान के प्रकाश ने अन्धविश्वास के अन्धकार का शमन कर दिया।

महिलाओं की परिस्थिति में सुधार

महिलाओं में शिक्षा के प्रचार के कारण उनकी स्थिति में सुधार हुआ है। वे अपने प्रति होने वाले अत्याचारों से कानून द्वारा अपनी रक्षा व बचाव करने के लिए पहले की अपेक्षा अधिक जागरूक हुई हैं। विलम्ब विवाह ने स्त्रियों को अपनी क्षमताओं के विकास का अवसर प्रदान किया है। स्त्रियों का कार्य क्षेत्र घर के अतिरिक्त व्यवसाय में प्रवेश के कारण व्यापक हो गया है जिससे उनमें किसी मसले पर स्वतंत्र निर्णय लेने की क्षमता विकसित हुई है। औद्योगीकरण के कारण स्त्रियों के कार्य क्षेत्र व्यापक होने से स्त्रियों में स्वाभिमान तथा आत्मविश्वास में वृद्धि हुई है।

प्रवक्ता
आर्थिक प्रशासन एवं
वित्त प्रबन्ध विभाग
राजकीय महा. विद्यालय
राजगढ़ (अलवर) राज.

ग्रामीण औद्योगीकरण की आवश्यकता एवं संभावनाएं

डा. राकेश अग्रवाल

गांव भारतीय समाज व्यवस्था के महत्वपूर्ण अंग हैं। गांवों की सुख-समृद्धि पर ही सम्पूर्ण देश की प्रगति निर्भर करती है। आज भी देश की तीन चौथाई जनसंख्या गावों में रहती है, जो मुख्य रूप से कृषि व पशुपालन द्वारा अपना जीवन-यापन करती है। बड़ी संख्या में ग्रामीण भूमिहीन हैं, जिस कारण गावों में निर्धनता अधिक है। गांवों में सुविधाओं व साधनों की कमी के कारण शिक्षित ग्रामीण शहरों की ओर पलायन कर जाते हैं। रोजगार की तलाश में भूमिहीन कृषि श्रमिक भी गांव छोड़ कर शहर में आ बसते हैं। इन परिस्थितियों को देखते हुए गांवों में ही रोजगार के अवसर उत्पन्न करने की आवश्यकता है। इसमें ग्रामीण औद्योगीकरण अत्यन्त कारगर सिद्ध हो सकता है। वास्तव में कृषि-उद्योग गांवों की जरूरत है।

गांवों के संसाधनों का प्रयोग गांवों की तरक्की के लिए ही होना चाहिए। जो गांव सबका पेट भरते हैं, संसाधनों के बाहर चले जाने के कारण वे ही भूखे रह जाते हैं। ग्रामीण उद्योगों के माध्यम से ग्रामीण संसाधनों का समुचित उपयोग होने से निश्चय ही गांवों के विकास के नए रास्ते खुलेंगे। कृषि जनित उत्पादों का उपयोग ग्रामीण उद्योगों के माध्यम से भलीभांति किया जा सकता है, जिससे एक ओर किसानों को उनकी फसल का पूरा दाम मिलेगा तो दूसरी ओर गांवों में रोजगार के साधन बढ़ेंगे। गांवों की खुशहाली के लिए ग्रामीण उद्योगों की स्थापना और उनका विस्तार जरूरी है। गांवों में इन उद्योगों के लिए कच्चा माल और जन-शक्ति बहुतायत से उपलब्ध है। ग्रामीण उद्योगों द्वारा ही इनका सही उपयोग सम्भव है।

ग्रामीण औद्योगीकरण की रूपरेखा

भारत की आर्थिक समस्या मुख्य रूप से ग्रामीण विकास की समस्या है। गांवों में उद्योगों के लिए आधारभूत सुविधाओं का होना जरूरी है अन्यथा ग्रामीण उद्योगों की सफलता संदिग्ध रह सकती है। उद्योगों के लिए यातायात, संचार, बिजली, पानी जैसी मूलभूत आवश्यकताओं को सुलभ कराना पहले जरूरी होता है। अतः गांवों को औद्योगिक क्षेत्र के रूप में विकसित करने के लिए पहले उन्हें सड़कों से जोड़ना जरूरी है, वहां ऊर्जा के स्रोत के रूप में बिजली पहुंचाना नितान्त आवश्यक है। वे सभी साधन व सुविधाएं गांवों में उलपब्ध होनी चाहिए जिनकी आवश्यकता उद्योगों के लिए समय-समय पर होती हैं। वित्त की सुविधा के लिए सहकारी वित्तीय संस्थाओं की स्थापना गांवों में औद्योगीकरण की गति को तीव्र कर सकती है। बाद में तो औद्योगिक विकास के साथ-साथ आवश्यक संसाधनों का प्रवाह स्वतः ही गांवों की ओर होने लगता है। बस उद्योगों की रोशनी गांवों को दिखाने की आवश्यकता है।

ग्रामीण औद्योगीकरण गांवों को स्वावलम्बी बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ग्रामीण उद्योग मुख्य रूप से कृषि उपज पर निर्भर करते हैं। इनके द्वारा कृषि से प्राप्त कच्चे माल से प्रक्रिया द्वारा उपयोगी पदार्थों का उत्पादन किया जाता है। ग्रामीण उद्योगों की सूची में प्रमुख रूप से चीनी मिल, गुड़, खाण्डसारी उद्योग, दाल मिल, तेल मिल, कपास एवं जूट उद्योग, बेकरी, फल संरक्षण उद्योग, डेयरी उद्योग, कृषि यंत्र एवं औजार निर्माण उद्योग, कागज उद्योग आदि को सम्मिलित किया जा सकता है। इन सभी उद्योगों का कच्चे माल की उपलब्धता को ध्यान में रख कर ग्रामीण क्षेत्रों में चलाना सब दृष्टियों से लाभप्रद है। ग्रामीण क्षेत्र ही इन उद्योगों के लिए उपयुक्त स्थल है।

गांवों में औद्योगिक इकाइयों का आकार सुविधानुसार छोटा-बड़ा हो सकता है। इन औद्योगिक इकाइयों का संचालन पूंजी-प्रधान न होकर श्रम प्रधान होना चाहिए। इससे जनसंख्या के बड़े भाग को रोजगार प्राप्त हो सकता है। स्वचालित मशीनें लोगों से उनका रोजगार छीनती हैं। गांवों में श्रम की कमी नहीं है। अतः ऐसे उद्योगों को लगाना चाहिए जिसमें गांवों के अधिक-से-अधिक लोगों को रोजगार मिल सके। महात्मा गांधी ने कहा था कि "भारत का मोक्ष उसके कुटीर उद्योग धन्धों में निहित है।" गांधीजी ऐसी औद्योगिक तकनीक के हिमायती थे जिनमें निम्नलिखित गुण होने चाहिए—

1. इसमें स्थानीय वस्तुओं का प्रयोग होना चाहिए।
2. यह अधिक रोजगार पूरक होनी चाहिए।
3. इसका उद्देश्य जनसंख्या के पलायन पर रोक होना चाहिए।

4. इसमें जनसाधारण द्वारा जन-साधारण के लिए उत्पादन होना चाहिए।

5. उत्पादन व संगठन प्रक्रिया सरल होनी चाहिए।

महात्मा गांधीजी के अनुसार ग्रामीण उद्योग श्रम सघन होते हैं तथा उनमें गांवों की उपज कच्चे माल के रूप में प्रयोग होती है। इनसे बेरोजगारी की समस्या कम होती है। इनसे गांवों की आत्मनिर्भरता बढ़ती है और शहरों पर निर्भरता कम होती है। ग्रामीणों का जीवन स्तर सुधरता है और उनमें आत्मविश्वास पैदा होता है। भारत जैसे कृषि प्रधान देश के लिए ग्रामीण औद्योगीकरण अत्यन्त आवश्यक है। तभी गांवों का उत्थान हो सकता है और ग्रामीणों को आर्थिक लाभ व सामाजिक न्याय मिल सकता है।

ग्रामीण औद्योगीकरण की वर्तमान स्थिति

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद औद्योगिक विकास पर तो ध्यान दिया गया किन्तु यह विकास सन्तुलित विकास नहीं कहा जा सकता। गांवों में उद्योगों के विकास के प्रयत्न नगण्य रहे। यहां तक कि बड़े उद्योगों के विकास ने गांवों के लघु व कुटीर उद्योगों को हतोत्साहित किया। बड़े उद्योगों की उत्पादों की प्रतियोगिता में ग्रामोद्योग के उत्पाद नहीं टिक सके और बहुत-सी ग्रामीण औद्योगिक इकाइयां बन्द हो गईं।

गांवों में रोजगार की दृष्टि से समय-समय पर अनेक कार्यक्रम चलाए गए जिनमें काम के बदले अनाज कार्यक्रम, समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, ग्रामीण रोजगार गारण्टी कार्यक्रम, ट्राइसेम आदि प्रमुख हैं। इन कार्यक्रमों से ग्रामीणों को स्थायी-अस्थायी रोजगार तो अवश्य मिला किन्तु गांवों के विकास का स्थायी समाधान नहीं मिल सका। ग्रामीण औद्योगीकरण का विचार ही एक मात्र ऐसा समाधान है जिससे गांवों की कायापलट सकती है—इसमें जहां रोजगार की पर्याप्त सम्भावनाएं विद्यमान हैं, वहीं कृषि व ग्राम विकास का निश्चित हल भी है। ग्रामीण औद्योगीकरण कृषि के साथ मिल कर ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ता प्रदान कर सकते हैं।

भारत में ग्रामीण एवं लघु उद्योगों में उत्पादन व रोजगार की स्थिति इस प्रकार है—

तालिका-1

उद्योग	उत्पादन (करोड़ रुपए में)		रोजगार (लाख व्यक्ति)	
	1984-85	1989-90	1984-85	1989-90
1. परम्परागत उद्योग				
खादी	170	300	14.60	20.00
ग्रामीण उद्योग	759	1,700	22.40	30.00
हस्तकरघा	2,880	3,680	74.70	98.10
हस्तशिल्प	3,500	5,400	27.40	35.80
रेशम	317	510	20.00	24.30
अन्य	100	170	5.90	9.20
कुल	7,726	11,760	165.00	217.40
2. आधुनिक उद्योग				
विद्युत चालित करघा	6,423	7,020	32.20	35.30
आधुनिक लघु इकाई	50,520	80,220	90.00	119.00
अन्य	1,061	1,100	27.90	28.30
कुल	58,004	88,340	150.10	182.60

वर्तमान में देश के ग्रामीण विकास में कृषि उद्योगों की स्थापना का उत्तरदायित्व विभिन्न सरकारी संगठनों एवं स्वायत्त संस्थाओं को सौंपा गया है। खादी और ग्रामोद्योग आयोग देश में परम्परागत कृषि-उद्योगों जैसे गुड़, खांडसारी, अनाज और दाल प्रशोधन, तेल, रेशा, शहद, हाथकागज, मोम, फल संरक्षण आदि उद्योगों के विकास का कार्य करता है। ग्रामीण क्षेत्रों में लघु एवं घरेलू कृषि-उद्योगों तथा इनके सहायक उद्योगों के विकास लिए ग्रामीण उद्योग परियोजना तथा जिला उद्योग केन्द्र स्थापित किए गए हैं। ये संस्थाएं इन उद्योगों की स्थापना हेतु लोगों को वित्तीय सहायता तथा तकनीकी परामर्श प्रदान करने के साथ-साथ इन उद्योगों के लिए स्थान-निरूपण एवं बाजार की उत्तम व्यवस्था भी करते हैं।

इस सबके बाद भी ग्रामीण उद्योगों की स्थिति देश में बहुत कमजोर रही है। इसके कारणों में मुख्य कारण यह है कि ग्रामीण उद्योगों पर खर्च बहुत कम किया गया है जबकि बड़े उद्योगों पर, जिनमें रोजगार दिए जाने की सम्भावनाएं बहुत सीमित हैं, यह खर्च काफी बढ़ा है। तालिका-2 से यह तथ्य स्पष्ट है।

ग्रामीण औद्योगीकरण के लाभ

गांवों में उद्योगों के विकास की पर्याप्त सम्भावनाएं विद्यमान हैं। कृषि-उद्योग तो ग्रामीण क्षेत्रों में ही ठीक प्रकार से फल-फूल सकते हैं। गांवों के परिवर्तित परिवेश में बेरोजगार ग्रामीण गांवों में औद्योगीकरण की सतत् प्रतीक्षा कर रहे हैं। ग्रामीण औद्योगीकरण जिन दृष्टिकोणों से अत्यन्त लाभदायक है उनमें से कुछ इस प्रकार हैं:

तालिका-2

पंचवर्षीय योजना	ग्रामीण व लघु उद्योगों पर प्रतिशत खर्च	बड़े उद्योगों पर प्रतिशत खर्च
प्रथम	2.0	2.79
द्वितीय	4.0	19.56
तृतीय	2.8	20.10
वार्षिक योजनाएं (1966-69)	1.9	22.8
चतुर्थ	1.5	18.2
पंचम्	1.3	24.0
षष्ठम्	1.0	25.0

1. ग्रामीण औद्योगीकरण गांवों और शहरों के बीच सन्तुलित विकास की कड़ी बनाता है। भूमिहीन निर्धनों को भी ग्रामोद्योग के माध्यम से ऊपर उठने का अवसर मिलता है।
2. ग्रामीण उद्योग श्रम सघन होने के कारण ग्रामीणों को बड़ी संख्या में रोजगार प्रदान करते हैं। इससे बेरोजगारी व अदृश्य बेरोजगारी समाप्त होती है।
3. ग्रामीण औद्योगीकरण से गांवों का आर्थिक विकास होता है जिससे नगरों जैसी सुविधाएं गांवों में सुलभ होने लगती हैं। इनसे गांवों की जनसंख्या का शहरों की ओर होने वाला पलायन रुक जाता है।
4. कृषि उपजों का गांवों में ही कच्चे माल के रूप में प्रयोग होने से फसल की अच्छी कीमत मिलती है। इससे कृषि का भी विकास होता है।
5. ग्रामीणों की आय में वृद्धि होने से उनके जीवन-स्तर में सुधार होता है। उनमें आत्म निर्भरता की भावना उत्पन्न होती है। ग्रामोद्योगों में लगे ग्रामीण गांव के विकास में महत्वपूर्ण योगदान करते हैं।
6. ग्रामीण औद्योगीकरण के कारण गांवों के संसाधन गांवों के विकास में लगते हैं।
7. ग्राम उद्योगों में ग्रामीणों के व्यस्त होने से अपराध व संघर्षों में कमी आती है। लोग अपने व गांव के विकास के लिए प्रयत्नशील बनते हैं।
8. ग्रामीण उद्योगों के द्वारा गांव देश के विकास में अधिक योगदान करने में सक्षम होते हैं।
9. ग्रामीण औद्योगीकरण से गांवों का चहुंमुखी विकास होता है। सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक सभी क्षेत्रों में श्रेष्ठ मूल्यों की स्थापना होती है।
10. गांवों में उद्योगों के विकास से कृषि-श्रमिक सामन्ती शोषण से मुक्त हो जाते हैं क्योंकि उद्योगों में उनको जीवन यापन का सहारा मिल जाता है।
11. गांवों की प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होती है। साधनों का प्रवाह शहरों से गांव की ओर होने लगता है।

उपर्युक्त तथ्यों को दृष्टिगत रखते हुए आवश्यकता इस बात की प्रतीत होती है कि ग्रामीण औद्योगिक विकास की एक नई व्यावहारिक योजना तैयार की जाए और उसे पूरी निष्ठा व ईमानदारी के साथ लागू किया जाए, जिससे गांव खुशहाल बन जाए। बहुत से ग्रामीण लोग गांवों में औद्योगिक विकास के पक्ष में नहीं रहते। उनका मानना है गांवों में औद्योगीकरण से गांवों का सामाजिक वातावरण दूषित हो जाता है। लाभों की तुलना में यह दोष नगण्य है। वास्तव में ग्रामीण औद्योगीकरण वर्तमान और भविष्य का तकाजा है।

एस. एस. वी. (पो. ग्रे.) कालेज,
"हिमदीप" राधापुरी,
हापुड़-245101 (उ. प्र.)

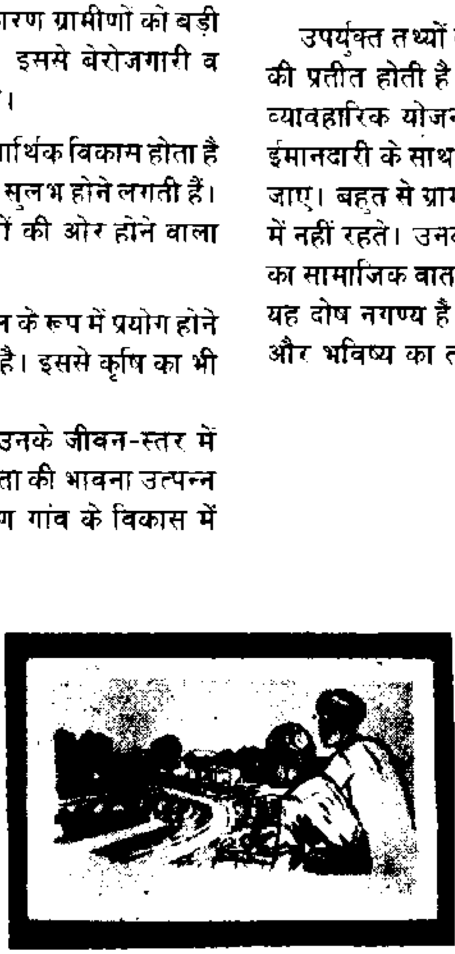

ग्रामोद्योगों के विकास में सहायक खादी और ग्रामोद्योग आयोग

डॉ. अजय जोशी

भारत जैसे विकासशील देश जहां की जनसंख्या का लगभग 75 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों में रहता हो वहां उन ग्रामीण क्षेत्रों का विकास करना नितांत आवश्यक है। ग्रामीण क्षेत्रों में विकास के दो आधार हैं—प्रथम कृषि तथा द्वितीय ग्रामोद्योग। कृषि का ग्रामीण आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान होता है। अधिकांश ग्रामीण अर्थव्यवस्था का आधार कृषि ही है। कृषि आज भी मानसून का जुआ है। अतः ग्रामीण विकास के लिए केवल कृषि के भरोसे नहीं रहा जा सकता। इस दिशा में ग्रामोद्योगों का महत्वपूर्ण स्थान है। ग्रामोद्योग के माध्यम से ग्रामीण बेरोजगारी की समस्या के समाधान में सहायता मिलती है तथा राष्ट्रीय उत्पादन में भी वृद्धि होती है। इससे राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है तथा ग्रामीण क्षेत्रों के विकास में सहायता मिलती है।

देश के ग्रामीण क्षेत्रों में औद्योगीकरण की दिशा में कई संस्थाएं तथा एजेन्सियां प्रयासरत हैं। इन सभी में खादी और ग्रामोद्योग आयोग का महत्वपूर्ण स्थान है। आयोग एक विधिविहित संस्था है। जिसकी स्थापना 1956 में संसद के 61वें अधिनियम के द्वारा की गई। वर्ष 1987 में अधिनियम 12 द्वारा इसे संशोधित किया गया। यह आयोग ग्रामीण क्षेत्रों में खादी और ग्रामोद्योग के विकास के लिए विभिन्न योजनाओं का निर्माण तथा क्रियान्वयन करता है। आयोग अपनी योजनाओं के क्रियान्वयन तथा ग्रामीण औद्योगीकरण हेतु आवश्यक होने पर अन्य अभिकरणों में सहयोग व समन्वय भी स्थापित कर सकता है।

आयोग ने ग्रामोद्योगों को परिभाषित किया है। आयोग के अनुसार ग्रामोद्योग का अर्थ है ग्रामीण क्षेत्र जिसकी जनसंख्या 10 हजार से अधिक नहीं हो, में स्थापित कोई उद्योग जो बिजली का प्रयोग करके अथवा किए बिना उत्पादन कार्य करता हो अथवा सेवा प्रदान करता हो जिसमें संयंत्र, मशीनरी, भूमि व भवन आदि में स्थिर पूंजी निवेश कारीगर या कार्यकर्ता 15,000 रुपये से अधिक न हो।

वर्तमान में आयोग ने ग्रामोद्योगों के अंतर्गत अनाज व दाल प्रशोधन, घानी तेल, ग्रामीण चर्म, दियासलाई, पटाखे और अगरबत्ती, गुड़ व खाण्डसारी, ताड़गुड़, अखाद्य तेल और साबुन, हाथ कागज, ग्रामीण कुम्भकारी, मधुमक्खी पालन, रेशा, लोहारी, बढ़ईगीरी, मीथेन गैस तथा खाद का निर्माण और उपयोग, चूना सीपी तथा अन्य चूना उत्पाद, लाख निर्माण, औषधीय कार्यों के लिए जड़ी-बूटियां तथा फलों का संग्रह, फल प्रशोधन और परिरक्षण, बांस और बेंत कार्य, अल्युमिनियम के घरेलू उपयोग के बर्तनों का निर्माण, गोंद और रेजिन का निर्माण, कत्था, लोक वस्त्र, पॉली वस्त्र का निर्माण, मक्का और रागी का प्रशोधन और रबर वस्तुओं के निर्माण आदि को सम्मिलित कर रखा है।

खादी और ग्रामोद्योग आयोग स्वयं तथा ग्रामीण विकास में संलग्न विभिन्न अभिकरणों के सहयोग से ग्रामीण औद्योगीकरण की दिशा में भी अग्रसर है। आयोग तथा राज्य खादी और ग्रामोद्योग बोर्ड ग्रामोद्योग के विकास हेतु ग्रामीण क्षेत्रों में औद्योगीकरण की दिशा में प्रयासरत व्यक्तियों तथा संस्थाओं को वित्तीय सहायता प्रदान करने, तकनीकी सहायता प्रदान करने, प्रशिक्षण प्रदान करने, कच्चा माल आदि उपलब्ध कराने से संबंधित सहयोग प्रदान करते हैं। आयोग अपने बिक्री केन्द्रों तथा भवनों के माध्यम से ग्रामोद्योगों के उत्पादों के विपणन में भी महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान करता है। खादी तथा ग्रामोद्योग आयोग ग्रामोद्योग के विकास तथा विस्तार हेतु व्यक्तियों तथा संस्थाओं को न्यूनतम ब्याज दरों पर ऋण तथा अनुदान प्रदान करता है। आयोग ने वर्ष 1987-88 में ग्रामोद्योग के विकास के लिए 52.19 करोड़ रुपये का ऋण तथा 12.69 करोड़ रुपये का अनुदान दिया। इस प्रकार कुल 64.88 करोड़ रुपये की सहायता प्रदान की।

आयोग द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में औद्योगीकरण हेतु कार्यरत व्यक्तियों तथा संस्थाओं को विभिन्न रूपों में दी गई सहायता से ग्रामीण औद्योगीकरण की दिशा में तेजी से प्रगति हुई है। ग्रामीण क्षेत्रों में औद्योगिक उत्पादन बढ़ा है, उत्पादन में वृद्धि के फलस्वरूप बिक्री बढ़ी है। ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार अवसर बढ़ाने तथा कारीगरों की आय बढ़ाने में भी आयोग का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। आयोग की ग्रामोद्योगों के विकास

तथा विस्तार में पिछले पांच वर्षों की प्रगति को निम्न तालिका द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

तालिका

खादी और ग्रामोद्योग आयोग का ग्रामीण औद्योगीकरण में योगदान

क्र. सं.	वर्ष	उत्पादन (करोड़ रु. में)	विक्रय (करोड़ रु. में)	रोजगार (लाख व्यक्ति)	उपार्जन (करोड़ रु. में)
1.	1983-84	722.16	775.76	21.92	192.65
2.	1984-85	807.06	880.46	24.82	220.49
3.	1985-86	929.03	1008.77	25.61	257.07
4.	1986-87	1098.66	1208.80	26.82	298.72
5.	1987-88	1260.88	1391.51	27.76	353.52

इस तालिका से यह स्पष्ट है कि विगत पांच वर्षों में खादी तथा ग्रामोद्योग आयोग ने ग्रामीण औद्योगीकरण के माध्यम से औद्योगिक उत्पादन, विक्रय, ग्रामीण रोजगार की उपलब्धि तथा ग्रामीण क्षेत्रों में उपार्जन वृद्धि आदि सभी दिशाओं में महत्वपूर्ण प्रगति की है। जहां वर्ष 1983-84 में ग्रामोद्योग उत्पादन 722.16 करोड़ रुपये का था वह 1987-88 में बढ़कर 1260.88 करोड़ रुपये हो गया। पांच वर्षों में यह वृद्धि 42.72% रही। आयोग के माध्यम से ग्रामीण औद्योगिक उत्पादों के विपणन में भी महत्वपूर्ण सहायता मिली है। वर्ष 1983-84 में 775.76 करोड़ रुपये मूल्य के ग्रामोद्योग उत्पादों का विक्रय किया गया। विक्रय की मात्रा 1987-88 में बढ़कर 1391.51 करोड़ रुपये हो गई। इस प्रकार विक्रय के क्षेत्र में वृद्धि की दर 79.37% रही। आयोग ने ग्रामोद्योग के माध्यम से रोजगार के अवसरों के सृजन में भी महत्वपूर्ण कार्य किया है। वर्ष 1983-84 में 21.92 लाख व्यक्तियों को रोजगार प्रदान किया गया। वर्ष 1987-88 में यह संख्या बढ़कर 27.76 लाख व्यक्ति हो गई। रोजगार अवसरों में भी 26.64% वृद्धि दर काफी महत्वपूर्ण है। ग्रामोद्योग में कार्यरत व्यक्तियों के उपार्जन में भी निरंतर वृद्धि का क्रम जारी है। जहां वर्ष 1983-84 में कुल उपार्जन 192.65 करोड़ रुपये का था वहीं वर्ष 1987-88 में यह बढ़कर 353.52 करोड़ रुपये हो गया। उपार्जन में पिछले पांच वर्षों में वृद्धि 83.5% की रही।

यद्यपि ग्रामोद्योग में प्रति व्यक्ति उपार्जन अपेक्षाकृत कम है फिर भी यह औसत 12 रुपये से 25 रुपये प्रति व्यक्ति बैठ जाता है। यद्यपि वर्तमान परिस्थितियों में यह कम है फिर भी ग्रामीण अर्थव्यवस्था की दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण है। आयोग अपने कारीगरों की आय में वृद्धि करने के लिए उत्तम मशीनों, साधनों तथा विधियों के विकास की दिशा में सतत् प्रयासरत है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि खादी और ग्रामोद्योग आयोग ग्रामीण औद्योगीकरण की दिशा में कार्यरत एक महत्वपूर्ण संस्था है। आयोग द्वारा विभिन्न संस्थाओं तथा समितियों को वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है। इन संस्थाओं ने देश भर में ग्रामीण क्षेत्रों में औद्योगीकरण की दिशा में महत्वपूर्ण प्रयास किया है। आयोग ग्रामोद्योग के विकास की दिशा में निरन्तर अग्रसर है। आयोग ने हाल ही में कामगारों के लिए बीमा की योजना तथा अधिकाधिक रोजगार के अवसरों का विकास करने के लिए प्रयास किए हैं।

प्राध्यापक, स्नातकोत्तर व्यवसाय प्रशासन विभाग,
श्री जैन पी. जी. कॉलेज गंगा शहर,
बीकानेर, (राजस्थान)

(पृष्ठ 40 का शेष)

की वृद्धि हुई है। इकाइयों की वार्षिक वृद्धि की दर समस्त लघु क्षेत्र के लिए 16 प्रतिशत है जबकि आरक्षित इकाइयों के लिए यह 30 प्रतिशत अंकित किया गया है। छठी योजना (1980-85) में समस्त उद्योगों के लिए विकास की दर 6.4 प्रतिशत थी जबकि लघु क्षेत्र के लिए यह दर 9.5 प्रतिशत पाई गई है। सातवीं पंचवर्षीय योजना के प्रथम वर्ष (1985-86) में 1970-71 के निश्चित कीमत दर पर कुल औद्योगिक उत्पादन में 8.7 प्रतिशत की दर से वृद्धि हुई है जबकि लघु क्षेत्र में विकास की दर 12.8 प्रतिशत अंकित की गई है।

लघु औद्योगिक इकाइयों के वर्तमान विकास दर को देखते हुए इनका भविष्य काफी उज्ज्वल लगता है किन्तु यहां यह भी उल्लेखनीय है कि इनके वर्तमान विकास में सरकारी संरक्षण और अनुदानों का विशेष योगदान है। लघु उद्योगों को प्रतिष्ठित करने हेतु अनेक उपाय किए गए हैं किन्तु उनकी सार्थकता तब सामने आएगी जब आरक्षण मुक्त एवं अनुदान रहित होकर लघु औद्योगिक इकाइयां आत्मनिर्भर होकर प्रगति कर सकेंगी। लघु उद्योगों के विकास में जनजागरण एवं जन सहयोग की बड़ी आवश्यकता है जिससे लोग लघु क्षेत्र में निर्मित वस्तुओं के प्रयोग में रुचि लें जिसके परिणामस्वरूप इनमें निर्मित वस्तुओं की मांग में वृद्धि होगी और उत्पादन को प्रोत्साहन मिलेगा।

प्रवक्ता, भूगोल विभाग,
इलाहाबाद डिग्री कालेज, इलाहाबाद-3

आंखों की देखभाल कैसे करें

आभा जैन

आंखें आपके तन मन दोनों का आइना है। आपके तन पर क्या बीत रही है आंखें बिना पूछे ही इसका जवाब दे देगी—इसी तरह आपका मन किन स्थितियों से गुजर रहा है आंखें इसकी रिपोर्ट दे देंगी। विश्व में हर वर्ष करीब 5 लाख बच्चे अन्धे हो जाते हैं और कुछ ही सप्ताह बाद इनमें से करीब 3 लाख बच्चे मर जाते हैं। विटामिन 'ए' की कमी से ही बच्चे अन्धे हो जाते हैं।

आंखें स्वस्थ रहें—इसके लिए कुछ उपाय प्रस्तुत हैं:

आंखों की प्रकृति ठण्डक पसन्द है—अत: सुबह उठते ही मुंह में ठण्डा पानी भरकर मुंह फुलाकर ठण्डे जल से आंखों पर छींटे लगाने चाहिए।

रात में एक चम्मच त्रिफला मिट्टी के बर्तन में भिगो दें, सुबह निथरे हुए पानी से आंखों को अच्छी प्रकार धोयें। इससे न केवल आंखों की ज्योति की रक्षा होती है—नेत्र ज्योति में बढ़ोतरी होती है—आंखों की अनेक बीमारियां ठीक हो जाती हैं।

पैरों के तलवों में सरसों के तेल की मालिश करने और स्नान से पूर्व पैर के अंगूठे तेल से तर कर देने से आंखों के रोग नहीं होते एवं नेत्र ज्योति में वृद्धि होती है।

आंखों की सुन्दरता एवं स्वस्थता के लिए अच्छी नींद भी आवश्यक है वरना अनिद्रा की अवस्था में आंखों के चारों ओर काली लकीरें पड़ जाती हैं और आंखों की ज्योति धीरे-धीरे मंद पड़ जाती है। सूर्य की रोशनी के सामने टकटकी लगाकर कभी भी नहीं देखना चाहिए। चलते-फिरते अथवा रेलगाड़ी, बस इत्यादि में नहीं पढ़ना चाहिए। अध्ययन के दौरान प्रकाश न तो बहुत ही तेज ही हो, न हल्का हो। आंखों को, धूप, धुएं एवं धूल से बचाना चाहिए। धूप एवं धूल से बचाने के लिए रंगीन चश्मे का इस्तेमाल करना चाहिए। आंखों में चिकनाई रहना आवश्यक है अत: सप्ताह में एक बार किसी अच्छे सुरमे का प्रयोग करना चाहिए। अलग-अलग व्यक्ति के लिए अलग-अलग सलाई का प्रयोग करें अथवा शुद्ध शहद उपलब्ध हो तो एक सलाई सप्ताह में एक बार डालने से दृष्टि कभी मंद न होगी। अधिक धूम्रपान करने से भी आंखों को नुकसान होता है। खाद्य सामग्री में जिनमें विटामिन 'ए' भरपूर मात्रा में हो, अधिकाधिक सेवन करना चाहिए—गाजर के मौसम में प्रतिदिन गाजर का सेवन करना चाहिए।

आजकल टी. वी. का बहुत प्रसार हो गया है एवं आने वाले समय में इसकी संख्या में अभूतपूर्व बढ़ोतरी होगी, किन्तु टी. वी. आंखों के लिए बहुत ही नुकसानदायक है। मद्रास मेडिकल कालेज के सुप्रसिद्ध नेत्र-रोग विशेषज्ञ डा. एस. के. पिल्लई ने तमिलनाडु राज्य में टी. वी. के दुष्परिणामों पर लगातार 5 माह तक गहन अध्ययन करके यह निष्कर्ष निकाला है कि आगामी चार पांच वर्षों में नियमित टी. वी. देखने वाले दर्शकों की आंखों में इस सीमा तक रोग पैदा होंगे जो नेत्र विशेषज्ञों के बूते के भी बाहर होंगे।

आंख लाल होने या अन्य कोई रोग होने पर चश्मे का प्रयोग करना चाहिए। आई फ्लू का रोग तो सिर्फ रोगी की ओर देख लेने मात्र से हो जाता है। रोगी व्यक्ति को अलग सुलाना चाहिए, उसका तौलिया अलग रखना चाहिए। मक्खियां भी नेत्र रोग फैलाती हैं अत: स्वच्छता का हर स्तर पर ध्यान रखना चाहिए।

दूर की वस्तुओं को अधिक देखना, निरन्तर रोने, क्रोध करने, शोक क्लेश, चोट लगने, अधिक मिर्च-मसाले, आंसुओं को रोकने, सूक्ष्म वस्तुओं को देखने का काम अधिक समय तक करने से नेत्र रोग होने की सम्भावना रहती है अत: उचित सावधानी रखनी चाहिए।

40 वर्ष की अवस्था के बाद प्राय: मनुष्यों को चश्मे की आवश्यकता हो जाती है। अत: 40 वर्ष की उम्र होने के बाद अच्छे नेत्र विशेषज्ञ से आंखें चैक करवा लेनी चाहिए।

44, बंदा मार्ग,
भवानी मंडी
(राज.) 326502

लघु एवं कुटीर उद्योग जो कि कृषि के सहायक धन्धे के अन्तर्गत आते हैं, में न केवल ग्रामीण व्यक्तियों को रोजगार उपलब्ध होता है बल्कि ग्रामीण स्त्रियां भी खाली समय में इनके माध्यम से सम्पत्ति अर्जित करती हैं।

आर.एन./708/57
डाक-तार पंजीकरण संख्या : डी (डी एन) 98
पूर्व भुगतान के बिना एन.डी.पी.एस.ओ., नई दिल्ली में डाक में डालने
की अनुमति (लाइसेंस) : यू (डी एन)-55

RN/708/57
P & T Regd. No. D (DN) 98
Licenced under U (DN)-55
to post without pre-payment at NDPSO, New Delhi

डा. श्याम सिंह शशि, निदेशक प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित और
तारा आर्ट प्रेस, बी-4, हंस भवन, बहादुर शाह ज़फर मार्ग, नई दिल्ली-110002 द्वारा मुद्रित